धरोहर

(बहुजनों के प्रेरणा स्त्रोत)

सावित्रीबाई फूले

महात्मा ज्योतिबा फूले

संत रविदास

पेरियार ई.वी.रामास्वामी

डा० भीमराव अम्बेडकर

श्री नारायण गुरू

जगजीवन राम

कांशीराम

संकलन एवं सम्पादन

डॉ. राधे श्याम राम

प्रकाशक

बिहार दलित विकास समिति

बहुजनों के प्रेरणा स्त्रोत

संकलन एवं सम्पादन
डॉ. राधे श्याम राम

प्रकाशक
बिहार दलित विकास समिति

विषय–सूची

क्र.सं.	विषय	पृ० सं०
I.	निदेशक की कलम से..	03
II.	प्रस्तावना	04
III.	दो शब्द	05
1	सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फूले	06
2	स्त्रियों की उद्धारक सावित्रीबाई फूले	13
3	सामाजिक क्रांतिकारी बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर	19
4	बहुजन नायक मान्यवर कांशीराम	29
5	भारत की प्रथम दलित महिला मुख्यमंत्री सुश्री मायावती	37
6	समर्पित राष्ट्रवादी बाबू जगजीवन राम	43
7	महान संत एवं समाज सुधारक श्री नारायण गुरु	52
8	विद्रोही संत रविदास	58
9	सतनामी सम्प्रदाय के जनक श्री गुरू घासीदास	64
10	भारत के प्रथम दलित राष्ट्रपति डॉ. के.आर. नारायणन...	67
11	सिद्धू–कानू का आन्दोलन	72
12	महान दलित स्वतंत्रता सेनानी उदा देवी पासी	75
13	बिहार के लेनिन बाबू जगदेव प्रसाद	78
14	पेरियार ई०वी० रामास्वामी	84
15	गुदड़ी के लाल कर्पूरी ठाकूर	92
16	दृढ़निश्चयी दशरथ मांझी के आगे पहाड़ नतमस्तक	101

निदेशक की कलम से...

इतिहास बीती हुई कहानी मात्र नहीं है। यह व्यक्ति विशेष के द्वारा किसी समयान्तराल में लाये गये परिवर्तन का दस्तावेज होता है। यह दस्तावेज भविष्य की बुनियाद गढ़ने में मार्गदर्शक का कार्य करता है। आज समाज में अपने पूर्वजों के त्याग और बलिदान के प्रति उदासीनता देखने को मिलती है। हम यह भूल चुके हैं कि वे थे तो हम हैं। इतिहास गढ़ने के लिए इतिहास को जानना आवश्यक होता है। अपने पूर्वजों के जीवन और संघर्ष को ध्यान में रखे बिना भविष्य निर्माण के मार्ग में आने वाली बाधाओं से पार पाना हमारे लिए संभव नहीं हो पायेगा।

हमारा समाज आज जिस अवस्था में है, यहाँ तक लाने में हमारे पूर्वजों ने अनेक प्रकार के कष्ट झेले हैं। हमें उनका सम्मान करना ही चाहिए। यदि हम उनका सम्मान नहीं करेंगे तो कृतघ्न कहलायेंगे। उन्होंने हमारी मुक्ति का मार्ग दर्शाया है। किन्तु हम उस मार्ग को देख ही नहीं पा रहे हैं। हम स्वार्थ एवं भक्ति में अंधे हो गये हैं। हम देखते हैं किन्तु दूसरों की नजर से। हम सुनते हैं किन्तु दूसरों के कानों से। हम दूसरों के बताये मार्ग पर चलते हैं। हमें हमारे पूर्वजों के बताये मार्ग का पता ही नहीं है। यही कारण है कि हम अज्ञानता के अंधे सुरंग में अपना भविष्य तलाशते हैं। हम जिसे ज्ञान समझ रहे हैं, वह हमारी गुलामी को पक्की करने का अघोषित आदेश है। हमें ऐसे ज्ञान से बचने का मार्ग हमारे पूर्वजों के संघर्ष में छिपा है। उस पर पड़े धूल को साफ करना होगा। यह कार्य हमें ही करना होगा। इसके लिए हमें अपने पूर्वजों के जीवन और संघर्ष को समझना होगा। उनके बताये हुए मार्ग कठिन हो सकते हैं किन्तु हमें मुक्ति उसी से मिलेगी।

हमारा समाज आस्तिक रहा है किन्तु अंधभक्त नहीं रहा है। अंधभक्ति का पाठ हमें गुलामी में जीने को मजबूर करने हेतु पढ़ाया जा रहा है। हमें वशीभूत करने हेतु मोक्ष और चमत्कार का पाठ पढ़ाया गया है। कालान्तर में हम उसके वशीभूत हो चुके हैं किन्तु समय – समय पर हमारे पूर्वजों यथा– बुद्ध, कबीर, नानक, रैदास, गुरुघासी दास, श्री नारायण गुरु, ज्योतिबा फूले, डॉ. अम्बेडकर आदि, ने हमें मार्ग दिखाने का कार्य किया है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम उन्हें जानें और उनके बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने भविष्य के निर्माण का सार्थक प्रयास करें।

प्रस्तुत पुस्तक **धरोहर** : ''बहुजनों के प्रेरणा स्रोत'' में बहुजन समाज के कुछ चुने हुए नेताओं के व्यक्तित्व और कृतित्व को रेखांकित मात्र किया गया है।

हमें आशा और विश्वास है कि यह पुस्तक बदलाव दूतों के लिए एक हस्त पुस्तिका के तौर पर उपयोगी और उनके द्वारा सामाजिक बदलाव के लिए किए जा रहे प्रयासों में मार्गदर्शक का कार्य करेगी। पुस्तक की सफलता के प्रति हम आशान्वित हैं और हमारा प्रयास है कि यह हर बदलाव दूत के लिए प्रेरणास्रोत और साधन सामग्री साबित हो।

अंत में इस पुस्तक के सम्पादन हेतु डॉ. राधेश्याम राम को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे अनुरोध पर इसे बहुत ही कम समय में सम्पादित कर प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराया है।

• ***फादर एन्टो***

प्रस्तावना

बिहार दलित विकास समिति सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 के तहत निबंधित एक संगठन है, जिसका उद्देश्य राज्य के दलितों का सर्वांगीण विकास है। इसका निबंधन वर्ष 1885/86 में किया गया था। यह समिति दलितों के विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील है। वर्तमान समय में समिति द्वारा राज्य के 10 से ज्यादा जिलों में अम्बेडकर युवा मंच एवं अम्बेडकर प्रेरणा दल का गठन किया गया है, जिनके द्वारा समाज के वंचित समुदाय में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं विकास के विभिन्न मुद्दों पर जागरूकता का कार्य किया जा रहा है। उनके इस अभियान में बहुजन समाज के नायकों के द्वारा समाज के उत्थान के लिए किए गए कार्यों के प्रति जागरूकता की आवश्यकता लम्बे समय से महसूस की जा रही थी। हाल के दिनों में समाज में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के प्रति जागरूकता बढ़ी है किन्तु आम जनता बड़ी तेजी से पूजा के तौर पर उनकी मूर्तियाँ स्थापित करने, फूल माला चढ़ाने और देवता बनाने में लग गयी है। यह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति समाज को अनभिज्ञ और श्रद्धालु बनाता है। उन्होंने स्वयं मूर्ति और नायक पूजा का विरोध किया था और आज उनकी मूर्तियों की पूजा होने लगी है। अर्थात् हमें अपने नायकों के कार्यों, त्याग और बलिदान के प्रति जागरूक होना है न कि उनकी मूर्ति पूजा करनी है।

हमारा इतिहास बहुत पुराना है और हमारे नायकों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है। उन सभी को एक छोटी सी पुस्तक में प्रस्तुत करना संभव नहीं था किन्तु बहुजन समाज के नायकों को आम लोगों के साथ ही अम्बेडकर युवा मंच एवं अम्बेडकर प्रेरणा दल और विभिन्न हितभागियों तक पहुँचाने का विचार लम्बे समय से हमारे मन में था जो इस पुस्तक के प्रकाशन से कुछ हद तक साकार हुआ है। यद्यपि कुछ चुने हुए नायकों को ही इस पुस्तिका में प्रस्तुत किया गया है, तथापि इसमें सम्मिलित नायकों ने हमारे जीवन को प्रेरित करने का कार्य किया है।

हमारी कोशिश रही है कि हमारी समिति और इससे जुड़े तमाम लोगों का वैचारिक विकास सकारात्मक दिशा में हो ताकि वे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें। इसके लिए हम समय – समय पर प्रशिक्षण देने का कार्य करते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तिका हमारे प्रशिक्षण में साधन सामग्री का कार्य करेगी, यह हमारा विश्वास है।

इस पुस्तिका में सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले हमारे नायकों को संक्षिप्त और सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है ताकि बच्चे भी आसानी से समझ सकें और उनसे प्रेरणा ले सकें। यदि ऐसा होता है तो यह पुस्तक की सफलता होगी।

प्रस्तुत पुस्तिका अम्बेडरक युवा मंच एवं अम्बेडकर प्रेरणा दल के सदस्यों के साथ ही सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए अपने नायकों को समझने में मददगार साबित होगी ।

• फादर जोस कार्येकाट

दो शब्द

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार हमारा समाज लगभग पाँच हजार वर्षों से गुलाम रहा है और गुलामी से मुक्ति का संघर्ष भी उतना ही पुराना है। इन पाँच हजार वर्षों में हजारों महापुरूषों ने हमें आजादी दिलाने हेतु अपनी कुर्बानी दी है। समय के अनुसार बहुत से अपने योद्धाओं और मुक्तिदाताओं को हम भूल चुके हैं। कुछ मुट्ठी भर महापुरुष याद हैं, उन्हें भी भूलाने के लिए समाज में द्वन्द्व चल रहा है।

हमें गुलाम बनाने वाले लोग झूठी कहानी गढ़ने में माहिर हैं और हम भोले लोग उनकी झूठी कहानी में विश्वास कर कभी – कभी अपने ही नायकों को अपना विरोधी मानकर उनके दुष्प्रचार में लग जाते हैं। हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए अनेक प्रकार की यातना झेली है। हमारे अस्तित्व को बचाने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के यतन किया है। वे भूखा रहे हैं। वे गन्दा साफ किए हैं। जूठा खाये हैं। नारकीय जीवन जीया है। जंगल में शरण लिया है। खून बहाये हैं। उनकी मंशा केवल यही रही कि हमारा अस्तित्व नहीं मिटे। ऐसे महान व्यक्तियों के प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए और उनके विचारों को फैलाने के लिए कार्य करना चाहिए। परन्तु सच यह है कि हम अपने ही पूर्वजों को बहुत कम जानते हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका में ऐसे ही महान व्यक्तियों के द्वारा दलितों, पिछड़ों और वंचित समुदायों के लिए किए गए कार्यों को संक्षेप में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। आशा है, पाठकों के ज्ञान में थोड़ी वृद्धि होगी और समाज को जागरूक करने में सहायता मिलेगी। इसके प्रकाशन के लिए मैं बिहार दलित विकास समिति विशेषकर इसके निदेशक फादर एन्टो एवं फादर जोस का आभार व्यक्त करता हूँ।

• ***डॉ. राधेश्याम राम***

सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फूले

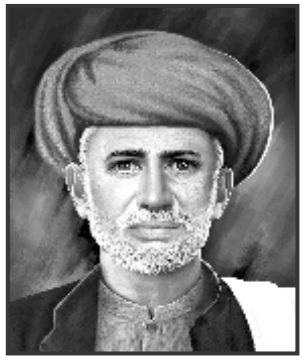

यह कहानी उन दिनों की है, जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था। देश भले ही अंग्रेजों का गुलाम था किन्तु दलित और पिछड़ी जातियाँ सवर्णों की गुलाम थीं। इससे अनजान एक युवक अपने मित्र के विवाह में बारात जा रहा था। उस युवक पर बारातियों की नजर पड़ी और वे बारात जाने से इंकार कर दिए। उन्होंने कहा कि जब तक यह युवक बारात से वापस नहीं जाता, हम बारात नहीं जायेंगे। दुल्हा के पिता और घर के अन्य लोग बारातियों को मनाने की कोशिश कर रहे थे। बाराती मानने को तैयार नहीं थे। दुल्हा को इस समस्या का आभास भी नहीं था। अंत में युवक निराश होकर बारात से घर वापस लौट गया। वह उदास होकर अपने दरवाजे पर बैठकर रो रहा था। उसी समय उसके दरवाजे के सामने से कुछ लोग गुजर रहे थे। उनके शरीर पर वस्त्र नहीं था। उनके माथे पर कौआ का पंख लगा था। कमर में झाड़ू बंधा था। गले में हांड़ी लटक रही थी। वे जिस रास्ते से गुजर रहे थे, उन्हें भगाया जा रहा था। यह देखकर युवक सोचने लगा। मुझे तो अपने दोस्त की बारात से बारातियों के विरोध के कारण घर वापस आना पड़ा। परन्तु, इन्हें तो रास्ते पर चलने भी नहीं दिया जा रहा है। इसके बाद भी ये खुश हैं और मैं दुखी हूँ। इसका कारण क्या हो सकता है? वह युवक अपना रोना भूल गया। वह रातभर सो नहीं सका। वह उन अछूतों के बारे में सोचने लगा, जिन्हें देखने मात्र से लोग अपवित्र हो जाते थे। उनके खुश रहने का क्या कारण हो सकता है? इस प्रश्न का जवाब वह खोजने लगा। वही युवक आगे चल कर महात्मा ज्योतिबा फूले के नाम से मशहूर हुआ। इन्हीं महात्मा ज्योतिबा फूले को भारत के संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने अपना गुरु माना था। महात्मा फूले के आदर्शों और विचारों को ही डॉ. अम्बेडकर ने आगे बढ़ाने का कार्य किया।

जन्म एवं स्थान

- **जन्म तिथिः** 11 अप्रैल 1827
- **स्थानः** महात्मा ज्योतिबा फूले का जन्म महाराष्ट्र के पुणे जिला के पुरन्दर तालुका के खानवाड़ी गाँव में हुआ था।

- **माता–पिताः** उनके पिता का नाम गोविंदराव और माता का नाम चिमनाबाई है। जब वे मात्र एक वर्ष के थे, उनकी माता जी का देहान्त हो गया। अतः उनका पालन – पोषण एक दाई की देखरेख में हुआ।
- **विवाहः** महात्मा ज्योतिबा फूले मात्र 12 वर्ष के थे, उनका विवाह 9 वर्ष की सावित्री बाई फूले के साथ कर दी गयी।
- **शिक्षाः** उनकी प्राथमिक शिक्षा एक मराठी पाठशाला में शुरू हुई किन्तु एक कट्टरपंथी ब्राह्मण धकजी दादाजी प्रभु के विरोध के कारण अन्य दलित बच्चों के साथ मराठी पाठशाला छोड़ना पड़ा। कट्टरपंथियों का मानना था कि दलित और शूद्रों के पढ़ने से अनिष्ट होता है और उन्हें पढ़ने का अधिकार नहीं है। ज्योतिबा पढ़ना चाहते थे। उनकी पढ़ने की रूचि से प्रभावित होकर मुंशी गफार बेग और पादरी लेजीट ने उनका नामांकन एक मिशन स्कूल में कराया, जिसने उनके जीवन को प्रभावित किया। उन्हें मानवीय मूल्यों का ज्ञान मिशन स्कूल में ही हुआ।
- **उत्प्रेरक घटनायेंः**

1). ब्राह्मण कुलकर्णी के उत्पीड़न एवं प्रताड़ना के कारण ज्योतिबा फूले के परदादा का अपने पैतृक गांव को छोड़कर पुणे में अपने रिश्तेदार के यहां रहने को मजबूर होना।

2). बाल्यावस्था में कट्टर पंथियों के विरोध के कारण दलित और शूद्रों के बच्चों के साथ पाठशाला छोड़ना।

3) अपने ब्राह्मण मित्र सखाराम हरि परांजपे की बारात में ब्राह्मणवादियों द्वारा विरोध एवं अपमानित किया जाना और विवश होकर बारात से लौटना आदि ने महात्मा फूले के जीवन को बदल दिया।

धार्मिक ग्रंथ का प्रभाव

महात्मा ज्योतिबा फूले ने देखा कि मुसलमान कुरान पढ़ने से नहीं रोकते हैं। ईसाई बाईबिल की किताब मुफ्त में बांटते हैं किन्तु हिन्दू अपने धार्मिक ग्रंथों यथा – वेद, पुराण, उपनिषद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि को छिपाकर रखते हैं। इसमें जरूर कोई राज की बात है। अतः उन्होंने बौद्ध, जैन, कबीर, नानक, रविदास, तुकाराम प्रो0 विल्सन जोन्स द्वारा लिखित हिन्दू धर्मशास्त्र एवं पुराण, जार्ज वाशिंग्टन और शिवाजी महाराज की जीवनी को पढ़ा। इनको पढ़ने

के बाद ज्योतिबा फूले की समझ में आ गया कि शिक्षा के बिना दलितों एवं पिछड़ों का उद्धार संभव नहीं है। उन्होंने कहा कि अछूतों और शूद्रों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और मानसिक गुलामी का कारण अशिक्षा है। गुलामगिरी नाम की पुस्तक में उन्होंने लिखा है–

शिक्षा के अभाव में मति नष्ट हुई,
मति के अभाव में नीति नष्ट हुई,
नीति के अभाव में गति नष्ट हुई,
गति के अभाव में वित्त नष्ट हुआ,
अकेले अविद्या ने इतनी दुर्दशा की शूद्रों की।

ये केवल चंद पंक्तियाँ नहीं हैं। इनमें गुलामों की गुलामी का पूरा दास्तान है। इनकी व्याख्या में ही गुलामी से मुक्ति का रास्ता भी है।

शस्त्र विद्या

महात्मा ज्योतिबा फूले छत्रपति शिवाजी की वीरता से काफी प्रभावित थे। अतः वे शस्त्र विद्या में पारंगत होना चाहते थे। उन्होंने मांग जाति के उस्ताद लहु साल्वे से भाला, बरछी, तीर–धनुष आदि चलाने की शस्त्र विद्या सीखी। लहु साल्वे अंग्रेजों के सामने सीना तानकर खड़े रहने वाले पहले शस्त्र गुरु हैं, जिन्होंने फूले को शस्त्र विद्या सिखाया था।

अछूतों के उद्धारक

महात्मा ज्योतिबा फूले के जन्म के समय महाराष्ट्र में ब्राह्मणवाद चरम पर था। अछूतों को दिन में घर से निकलना मना था। आवश्यक होने पर वे दिन में केवल दोपहर को ही निकल सकते थे क्योंकि उस समय उनकी परछाई उनके पैरों पर पड़ती थी और उनकी परछाई पर किसी सवर्ण के पैर पड़ने का खतरा नहीं रहता था। अछूत एक साथ ऊपर और नीचे दोनों वस्त्र नया नहीं पहन सकते थे। वे केवल काला वस्त्र ही पहन सकते थे। चलते समय वे जमीन पर थूक नहीं सकते थे। इसके लिए वे गले में मिट्टी की हाड़ी लटकाते थे। चलते समय उनके पैर के निशान पर किसी सवर्ण का पैर नहीं पड़े, इसके लिए अछूतों को कमर में झाड़ू बांधना पड़ता था। इससे उनके पैरों का निशान मिट जाता था और सवर्ण अपवित्र होने से बच जाता था। अछूत हाथ में घंटी बजाते हुए घर से बाहर निकलते थे ताकि सवर्ण रास्ते से हट जाएं और अपवित्र होने से बच जाएं। अछूतों को सार्वजनिक कुंओं और तालाबों से पानी लेने की मनाही

थी। उनको छूकर आने वाली हवा से बचने के लिए अछूतों को गाँव के दक्षिण टोला में रहने को मजबूर किया जाता क्योंकि दक्षिण से हवा बहुत कम आती है।

महात्मा ज्योतिबा फूले ने सबसे पहले 1849 में अछूतों को अपने हौज से पानी पीने के लिए खोल दिया। नगरपालिका का सदस्य होने के कारण उन्होंने सार्वजनिक स्थानों पर हौज बनवाने की व्यवस्था की। छुआछूत मिटाने, अछूतों को गले लगाने तथा उनके लिए शिक्षा का द्वार खोलने, नारी शिक्षा की मशाल जलाने के कारण उन्हें अपने ही कुटुम्ब के विरोध का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणवादियों ने इसके लिए कुटुम्ब के लोगों पर दबाव डाला। उनके पिता ने रोष प्रकट करते हुए ज्योतिबा राव फूले एवं सावित्री बाई फूले को घर से बाहर कर दिया। फूले दम्पति खुशी के साथ महारों के साथ रहते हुए उन्हें शिक्षित करने लगे। अछूतोद्धार का यह पहला उदाहरण है, जिसने बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन की जमीन को तैयार किया।

विद्यालय की स्थापना एवं स्त्री शिक्षा

महात्मा ज्योतिबा फूले अमेरिकन ईसाई पास्टर महिला मिसेज फोर्राट की मिशनरी स्कूल से काफी प्रभावित थे और स्त्री शिक्षा के लिए एक ऐसा ही विद्यालय खोलना चाहते थे। इसे साकार करने के लिए उन्होंने अपने मित्र सदाशिव बल्लाल गोवंदे के सहयोग से पुणे के पेठ मुहल्ले में किराये के मकान में 1848 ई0 में एक विद्यालय खोला। यह देश में अपनी तरह का पहला विद्यालय था। उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षित कर उन्हें शिक्षिका के रूप में कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया। सावित्री बाई फूले को इस कार्य में दारूण दुख का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणवादियों ने उनके ऊपर गोबर, कीचड़ और नाली का गंदा पानी तक फेंका।

विद्यालय में दलितों और पिछड़ों की लड़कियां पढती थीं। इस कार्य से कट्टरपंथी ब्राह्मण भड़क उठे। वे दलितों को समझाने लगे कि फूले धर्म विरोधी कार्य कर रहा है। इससे अनिष्ट होगा। आप अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए नहीं भेजें। ब्राह्मण अनेक घिनौने कार्य से भी फूले और उनकी पत्नी सावित्री बाई के हौसले को नहीं तोड़ पाए, तब उन्होंने फूले के पिता को भड़काया और कहा कि आपका बेटा कुल की मर्यादा को तोड़ रहा है। वह धर्म और समाज के नियम के विरूद्ध कार्य कर रहा है। इसलिए इसे रोका जाना चाहिए। पिता गोविन्द राव ने महात्मा फूले को बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु सफल नहीं हुए। अंत

में उन्होंने महात्मा फूले और उनकी पत्नी सावित्री बाई को घर से बाहर निकाल दिया। इस प्रकार इनके द्वारा संचालित विद्यालय को बंद करना पड़ा किन्तु नये जोश, नयी जगह पर उन्होंने एक नया विद्यालय खोला, जिसके कारण फूले दम्पति दलित स्त्री शिक्षा के महान पथप्रदर्शक बन गये। इसमें मुंशी गफार बेग की बेटी फातिमा ने बड़ा सहयोग किया। 1852 तक विभिन्न स्थानों पर दलितों और स्त्रियों के लिए 18 विद्यालय खोले गये। इन विद्यालयों का निरीक्षण करने के बाद अंग्रेज अधिकारियों ने प्रशंसा किया तथा फूले दम्पति को प्रशंसा पत्र और शाल देकर सम्मानित किया। इसे अंग्रेजी अखबार ऑब्जर्बर में प्रकाशित किया गया था।

सत्य शोधक समाज की स्थापना

महात्मा फूले शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करते हुए समाज में सुधार की जरूरत महसूस कर रहे थे। उनको ऐसा लगता था कि समाज में व्याप्त असमानता, छुआछूत, भेदभाव को दूर करने के लिए एक सामाजिक संगठन का होना आवश्यक है। अतः उन्होंने 24 सितम्बर 1873 को पूणे में सत्य शोधक समाज की स्थापना की। इस संस्था ने जाति प्रथा, छुआछूत, अस्पृश्यता, सती प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह, धार्मिक अंधविश्वास एवं कट्टरता आदि के खिलाफ आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिसका नेतृत्व महात्मा फूले ने किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा एवं विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया। उन्होंने गर्भवती विधवाओं की सहायता हेतु आश्रम खोला। समाज में जागरूकता के लिए 'सतसार' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया।

नगरपालिका का सदस्य

अंग्रेजी सरकार द्वारा 1882 के कानून से नगरपालिका में चुनाव प्रारम्भ किया गया। महात्मा ज्योतिबा फूले पूना नगरपालिका के सदस्य बने। उन्होंने सर्वप्रथम अछूतों और पिछड़ी जातियों के मुहल्ले में बिजली, पानी, नाली, स्वच्छता आदि की आवाज उठाई। इसमें सवर्णों ने भी इनका साथ दिया किन्तु धन की कमी का हवाला दिया। ज्योतिबा फूले ने इसे बेमानी बताया और लोकहित के कार्य पर जोर दिया। उन्होंने सब्जी बाजार का किराया चार आना से अधिक नहीं होने दिया।

किसान और मजदूर आन्दोलन

महात्मा ज्योतिबा फूले भारत में किसान – मजदूर आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। उन्होंने गरीब मराठों को संगठित किया तथा उनका नेतृत्व किया।

महात्मा ज्योतिबा फूले ने 1874 में महाराष्ट्र के किसान विद्रोह को सक्रिय और नैतिक सहयोग दिया। नगरपालिका के सदस्य बनने के बाद वे बम्बई के मिलों में काम करने वाले मजदूरों की समस्या पर भी ध्यान देने लगे। मिलों में मजदूरों से 14 घंटा कार्य लिया जाता था। 1884 में ज्योतिबा फूले ने दीनबन्धु सामाजिक सभा के खिलाफ आवाज उठाई जिसके बाद जिलाधिकारी डब्ल्यू.बी.बलोच की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया, जिसकी अनुशंसा पर महिलाओं, पुरुषों और बच्चों के काम के घंटों को अलग– अलग निर्धारित किया गया।

ज्योतिबा फूले के सामाजिक विचार

महात्मा फूले का मानना था कि आर्य बाहर से आये हैं और यहां के मूल निवासियों को गुलाम बनाया। देवासुर संग्राम मुख्यतः यहां के मूल निवासियों के साथ विदेशी आर्यों के संघर्ष की कहानी है। देवताओं की छवि और जीत दिखाई जाती है, वह ब्राह्मणों के मूल निवासियों के उपर वर्चस्व की कहानी है। उन्होंने ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाँह से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैर से शूद्रों के पैदा होने को कपोल कल्पना बताया।

महात्मा ज्योतिबा फूले ने सत्य शोधक समाज के माध्यम से पुरोहितवाद एवं जातिवाद के खिलाफ आन्दोलन चलाया। उनके आन्दोलन के केन्द्र में निम्न जातियों, दलितों एवं महिलाओं की आजादी थी। उनका मानना था कि ईश्वर एक है। ईश्वर की पूजा के लिए किसी विचौलिया की आवश्यकता नहीं है। कोई भी धार्मिक ग्रंथ किसी ईश्वर के द्वारा रचित नहीं है। ईश्वर के अवतार की झूठी कहानी ब्राह्मणों ने अपने फायदे के लिए गढ़ी है। जप, तप, पाप, पूण्य, कर्मकांड आदि ब्राह्मणों द्वारा अज्ञानता को बढ़ाने के लिए प्रचारित किया गया है। इसलिए महात्मा फूले ने ईश्वरवाद, देववाद, अवतारवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, मूर्ति पूजा, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य आदि का घोर विरोध किया।

महात्मा फूले का मानना था कि धर्म का मूल आधार कपोल कल्पित धार्मिक ग्रंथ हैं। इन धर्म ग्रंथों में देवताओं की महिमा का बखान किया गया है जो निराधार और भ्रामक हैं। ये धार्मिक ग्रंथ आम लोगों को मूर्ख बनाने के माध्यम हैं। उनकी एक पुस्तक जिसका नाम तृतीय रत्न है, में एक लालची ब्राह्मण द्वारा जनता को लूटने की कहानी दी गयी है। उन्होंने ब्राह्मणों से पूछा है कि सूरज, चांद, हवा पानी सब एक है, तो देवता और धर्म अनेक कैसे हो सकते हैं? उन्होंने वर्ण व्यवस्था के आधार पर वेद और ब्रह्म को सत्य मानने से इंकार कर

दिया। उन्होंने ब्रह्मा के संबंध में सवाल पूछा है कि यदि ब्रह्मा के चार मुख हैं, तो उनको चार नाभि, चार योनि, चार मलद्वार, आठ स्तन होने चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं। इसका अर्थ है कि ब्रह्मा ब्राह्मणों द्वारा कल्पित एक नाम है। उन्होंने अवतारवाद का विरोध किया। उनका मानना था कि ईश्वर केवल राक्षसों, दैत्यों, दानवों, वानरों आदि को मारने के लिए धरती पर क्यों जन्म लेते हैं? क्या वे उन राक्षसों आदि को समझाकर ठीक नहीं कर सकते थे? इसका अर्थ है कि वे ईश्वर नहीं हैं।

महात्मा फूले का मानना था कि अंग्रेजों के शासन काल में सभी उच्च पद ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं अन्य कुलीनों को ही कैसे मिल गये? उच्च पदों पर बैठा हुआ सवर्ण दलितों और अन्य पिछड़ी जातियों का शोषण करते हैं और शोषण करने के लिए कानून भी बनवा लेते हैं। महात्मा फूले ने ''किसान का कोड़ा'' नामक एक किताब लिखी है, जिसमें किसानों की जमीन हड़पने और लूटने वाले तहसीलदार, वकील, जज , मामलेदार आदि अधिकारियों की शोषण भरी कहानी का वर्णन है। महात्मा फूले ने उस समय की ब्रिटिश सरकार से दलितों, पिछड़ों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग की। नगरपालिका आदि की कार्यकारिणी में दलितों, पिछड़ों एवं महिलाओं की भागीदारी की मांग की। महात्मा फूले का देहावसान दिनांक 28 नवम्बर 1890 को हो गया था।

महात्मा फूले अपने तर्कों के आधार पर भारत की ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर चोट करने वाले पहले व्यक्ति नहीं हैं तथापि उनका आन्दोलन पहले बहुआयामी है। उन्होंने सत्य शोधक समाज के माध्यम से लोगों में जागरूकता फैलाने का कार्य किया और विद्यालय खोलकर दलितों और पिछड़ों में शिक्षा की ज्योति जलाने का कार्य किया। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के पहले अछूतों के लिए पानी का अधिकार दिलाने वाले वे पहले महामानव हैं। दलितों और पिछड़ों को नौकरियों में आरक्षण की मांग करने वाले महात्मा ज्योतिबा फूले पहले महान व्यक्ति हैं। उन्होंने विधवा विवाह और विधवा पुनर्वास के लिए आन्दोलन के साथ ही उसे मूर्त रूप देने की पहल की थी। वास्तव में उनका पूरा जीवन दलित और पिछड़ों की मुक्ति के लिए समर्पित रहा।

स्त्रियों की उद्धारक सावित्रीबाई फूले

''एक महिला घर के आंगन में चुल्हा जलायी हुई है। तावा पर रोटी रखी हुई है। रोटी जल रही है। वह लगातार अपने आंचल से आँसू पोंछ रही है। रोटी के जलने का कोई गम नहीं और आँसू हैं कि कम ही नहीं हो रहे हैं। वह किसी खयाल में डुबी हुई है। उसे समाज की सबसे उपेक्षित महिलाओं के प्रति कभी गुस्सा और कभी दया का भाव आ रहा है। उसे दुःख है कि आखिर, महिलाएँ अपने साथ होने वाले भेदभाव और उपेक्षा के प्रति जागरूक होना क्यों नहीं चाहती हैं? उसे पीड़ा है कि महिलाएँ अशिक्षा के अंधेरे से निकलना क्यों नहीं चाहती हैं? वे पुरुषवादी दमन और शोषण के प्रति विद्रोह क्यों नहीं करना चाहती हैं? ठीक इसी समय महात्मा ज्योतिबा फूले का आंगन में प्रवेश होता है। वे जलती हुई रोटी को देखते हैं और पूछते हैं, क्यों लोगों द्वारा दिए जाने वाले कष्ट से दुःखी हो रही हो? उनके कीचड़ और पत्थर से घायल हो गयी हो? महिला कहती है, उसे मार और कीचड़ से कष्ट नहीं हो रहा है। मुझे घायल होने का डर नहीं सता रहा है। मुझे उन हजारों महिलाओं पर तरस आ रहा है, जो सदियों से अशिक्षा के अंधे कुएँ में गोता लगा रही हैं। किन्तु उस अंधे कुएँ से बाहर नहीं आना चाहती हैं। मैं दुःखी इस बात से हूँ कि आखिर ये महिलायें कब तक रूढ़िवादी समाज के समाने बेबस और लाचार बनी रहेंगी। मेरा पक्का विश्वास है कि मैं उनके अंधकार को दूर करूंगी किन्तु समाज में फैली संवेदनहीनता से कष्ट हो रहा है। ऐसी महान महिला को हम सावित्रीबाई फूले के नाम से जानते हैं।''

ब्राह्मणवाद में दलित और स्त्री को सभी प्रकार के मानव अधिकारों से वंचित रखा गया है। हिन्दू धर्मग्रंथों में नारी को नरक की खान और ताड़न का अधिकारी बताया गया है। पुरुषवादी सोच वाले समाज ने उन्हें घर की दहलीज लाँघने पर कुलटा और चरित्रहीन कहकर संबोधित किया है। पति की मृत्यु होने पर नारी को आजीवन विधवा बनकर रहने अथवा उसकी चिता पर जीवित जलने को सती कहकर महिमा मंडित किया है। महिलाओं को शिक्षा का अधिकार नहीं था। इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ सल्तनत और मुगल काल में कोई बदलाव नहीं आया और शुरुआती दिनों में अंग्रेजी सरकार ने भी भारत की इस सामाजिक बीमारी को दूर करने में अपनी उदासीनता दिखाई।

महात्मा ज्योतिबा फूले ब्राह्मणवादी व्यवस्था से काफी दुखी थे और इसे समाप्त करने के लिए शिक्षा को महत्वूपर्ण मानते थे। उनका मानना था कि

ब्राह्मणवाद को समाप्त करने में स्त्रियों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है और इसलिए उन्होंने नारी शिक्षा पर जोर दिया। किन्तु इसके लिए कोई महिला शिक्षिका उपलब्ध नहीं हो रही थी। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई फूले को शिक्षित किया और स्त्रियों की शिक्षा के लिए तैयार किया। किन्तु स्त्रियों को शिक्षित करना आसान नहीं था। उस समय का समाज इसके लिए बिल्कुल ही तैयार नहीं था। परम्परावादियों द्वारा दलित और स्त्री उत्थान के हर कार्य का पुरजोर विरोध किया जाता था। इन विकट परिस्थितियों में महात्मा ज्योतिबा फूले एवं सावित्री बाई फूले ने 1848 में पूना में लड़कियों को शिक्षित करने के लिए पहला स्वदेशी विद्यालय खोला। सवर्णों ने यह प्रचारित किया कि फूले द्वारा धर्म विरोधी कार्य किया जा रहा है। इससे स्त्रियाँ भ्रष्ट एवं कुलटा हो जायेंगी। देवता नाराज हो जायेंगे। समाज में विकृति आ जायेगी। जिनके उद्धार के लिए यह महान कार्य शुरू किया गया था, वे ही सावित्री बाई फूले के ऊपर कीचड़, नाली का गंदा पानी, गोबर, गंदा और यहाँ तक की पत्थर भी फेंके। सावित्री बाई के विद्यालय जाने के दौरान महिलाएँ फब्तियां कसती थीं, पीछा करती थीं, भगाने का कार्य करती थीं। एक दिन इससे दुखी होकर सावित्री बाई रोने लगीं। महात्मा ज्योतिबा फूले ने रोने का कारण पूछा तो सावित्री बाई फूले ने कहा कि मैं इसलिए नहीं रो रही हूँ कि वे मेरे ऊपर पत्थर, कीचड़ या गंदा फेंकती हैं बल्कि इसलिए रो रही हूँ कि इनको अपनी गुलामी की असली वजह समझ में क्यों नहीं आ रही है। ब्राह्मणवादियों के विरोध एवं धमकियों के कारण महात्मा फूले के पिताजी ने इन्हें घर से निकाल दिया। इस समय फूले दम्पति को एक दोस्त उस्मान शेख और उनकी बहन फातिमा शेख ने शरण दिया और पुनः विद्यालय खोलने में सहयोग किया जिसमें फातिमा शेख ने सहयोगी शिक्षिका के रूप में अपना योगदान दिया।

जन्म तिथिः 3 जनवरी 1831

जन्म स्थानः नायगांव, जिला – सतारा में एक कृषक परिवार में हुआ था।

माता–पिताः सवित्री बाई फूले की माता का नाम लक्ष्मी एवं पिता का नाम खांडोजी नवेसे पाटिल था।

विवाहः मात्र 9 वर्ष की आयु में 12 वर्षीय महात्मा ज्योतिबा फूले के साथ हुआ था।

शिक्षाः सावित्री बाई फूले की शिक्षा महात्मा ज्योतिबा फूले के साथ विवाह होने के उपरांत शुरू हुई। लिखने और पढ़ने की प्रेरणा सावित्री बाई फूले को इनके पति महात्मा ज्योतिबा फूले से ही मिली। उन्होंने एक सामान्य स्कूल से तीसरी और चौथी कक्षा पास की। बाद में उन्होंने अहमदनगर में मिस फिर्राट इंस्टीच्यूट में प्रशिक्षण लिया। महात्मा फूले ने सामाजिक सुधार के अपने प्रयास में

सावित्रीबाई फूले को सदा अपने साथ रखा तथा नारी शिक्षा के क्षेत्र में एक चट्टान की तरह सावित्रीबाई के साथ खड़े रहे।

भारत की पहली महिला शिक्षिका

महात्मा ज्योतिबा फूले और सावित्री बाई फूले द्वारा 1 जनवरी 1848 को पुणा के बाड़े में महिलाओं के लिए पहला विद्यालय स्थापित किया गया। इस विद्यालय की प्रथम शिक्षिका सावित्रीबाई फूले को बनाया गया। इस विद्यालय के पहले बैच की छात्राओं की संख्या मात्र छः थी। हिन्दू धर्म में नारी और दलित को शिक्षा का अधिकार नहीं है। इस विद्यालय में लड़कियाँ पढ़ने वाली हैं, इससे ब्राह्मणवादियों के कान खड़े हो गये। उन्हें महसूस हुआ कि यह फूले दम्पति द्वारा उनके एकाधिकार के खिलाफ यह एक विद्रोह था। यह एक महान सामाजिक क्रांति थी। इसका विरोध होना स्वाभाविक था। फलतः सवर्णों ने नारियों की शिक्षा के खिलाफ दुष्प्रचार करना प्रारम्भ किया। इसे धर्म विरूद्ध प्रचारित किया गया। इससे भगवान नाराज हो जायेंगे, ऐसा कहा गया। इससे समाज में अराजकता फैलेगी और समाज छिन्न–भिन्न हो जायेगा, आदि प्रचारित किया गया। महात्मा फूले के पिता जी को दबाव दिया गया और इस धर्म विरोधी कार्य के लिए धमकी दी गयी। अंत में डर कर पिता ने फूले दम्पति को परिवार से अलग कर दिया। इस मुश्किल घड़ी में महात्मा फूले के दोस्त उस्मान शेख और उनकी बहन फातिमा शेख ने सहयोग दिया और अपने ही परिसर में विद्यालय खोलने हेतु स्थान उपलब्ध कराया। साथ ही, फातिमा शेख स्वयं भी एक सहयोगी शिक्षिका के तौर पर कार्य करने लगी। बाद में इन्होंने मंगल और महार जातियों के बच्चों के लिए विद्यालय खोला। 1852 तक इनके द्वारा कुल 18 विद्यालय का संचालन किया जा रहा था। 1852 को अंग्रेजी सरकार द्वारा विद्यालय का निरीक्षण किया गया और फूले परिवार को शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया। सावित्री बाई फूले को सरकार द्वारा सर्वश्रेष्ठ शिक्षक का सम्मान दिया गया।

महिला सेवा मंडल की स्थापना

सन् 1852 में सावित्रीबाई फूले द्वारा महिलाओं के बीच उनके अधिकारों, उनकी गरिमा और शिक्षा के महत्व के प्रति जनजागरूकता के लिए महिला सेवा मंडल की स्थापना की गयी। समाज में महिलाओं के विधवा होने पर उनके बाल का मुण्डन कर दिया जाता था, जो महिलाओं के लिए अपमानजनक था। इसके विरोध में महिला सेवा मंडल द्वारा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। पूना और बम्बई में विधवा मुण्डन के खिलाफ नाइयों द्वारा हड़ताल का सफल आयोजन किया गया, जिसका श्रेय महिला सेवा मंडल को दिया जाता है।

बाल आश्रय गृह की स्थापना

सन् 1863 में सावित्री बाई फूले द्वारा अपने ही बाड़े में बाल आश्रय गृह शुरू किया। यह अपने किस्म का अकेला बाल आश्रय गृह था। इसका उद्देश्य गर्भवती, ब्राह्मणों की विधवा महिला और बलात्कार पीड़ित महिलाओं द्वारा अपने बच्चों को सुरक्षित स्थान पर रखना था। इसके माध्यम से विधवाओं एवं बलात्कार पीड़ित महिलाओं के साथ ही साथ उनके अबोध बच्चों की हत्या को रोकना था। इससे महिला एवं शिशु मृत्यु दर को कम करने में सहयोग मिलने की संभावना थी। महात्मा ज्योतिबा राव फूले और सावित्री बाई फूले ने 1874 में एक विधवा ब्राह्मण काशीबाई के बच्चे को गोद लिया, जिसका नाम यशवंत राव है। यह बच्चा बड़ा होकर डॉक्टर बना। फूले दम्पति द्वारा किया गया कार्य प्रगतिशील कहे जाने वाले समाज के सामने एक बड़ा उदाहरण और मजबूत संदेश बना। यह कार्य 19वीं शताब्दी की एक बड़ी सामाजिक क्रांति था, जिसका मूल्यांकन हुआ ही नहीं।

सामाजिक बुराइयों के खिलाफ संघर्ष

ज्योतिबा राव विधवा पुनर्विवाह की पैरोकारी करते और उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले बाल विवाह और सती प्रथा जैसी सामाजिक बुराई के खिलाफ संघर्ष कर रही थीं। उनका मानना था कि इन बुराइयों के कारण महिलाएँ कमजोर और अस्तित्व विहीन होती हैं। उन्होंने बाल विधवाओं को शिक्षित कर समाज की मुख्यधारा में लाने और उनके पुनर्विवाह की वकालत की। इस महान कार्य को करना इतना आसान भी नहीं था। इसका पुरजोर विरोध तत्कालीन समाज के रूढ़िवादियों द्वारा किया गया किन्तु सावित्रीबाई उन परेशानियों से कभी विचलित नहीं हुईं।

छुआछूत और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष

महात्मा ज्योतिबा राव फूले के साथ मिलकर सावित्रीबाई फूले ने समाज में व्याप्त छुआछूत, भेदभाव और जातिवाद के खिलाफ आन्दोलन किया। उन्होंने निम्न जातियों के लिए समान अधिकार प्राप्त करने और हिन्दू समाज में सुधार के लिए काम किया। जिस समय रूढ़िवादी समाज के लोग अछूतों की छाया से अपवित्र हो जाते थे, उन दिनों फूले दम्पति ने अछूतों के लिए कुओं और हौज का पानी खोल दिया। उन्होंने अछूतों के लिए पानी पीने की पेशकश की जबकि रूढिवादी समाज द्वारा इसका विरोध हुआ।

प्लेग महामारी के रोगियों की सेवा

सन् 1897 में नाला सोपारा और महाराष्ट्र के अनेक हिस्सों में

बुलेसोनिक प्लेग महामारी फैल गया। आस–पास के लोग इस बीमारी के कारण मरने लगे। इस महामारी से लोगों को बचाने के लिए डॉ. यशवंत राव ने पूना के बाहरी इलाके में अपना एक क्लीनिक खोला। इस क्लीनिक में रोगियों को लाने का काम सावित्रीबाई फूले ने किया। माँ और बेटे की अनवरत सेवा से प्लेग रोगी ठीक हो रहे थे। किन्तु सावित्रीबाई फूले द्वारा एक प्लेग रोगी को अपनी पीठ पर लाद कर क्लीनिक लाने में वह स्वयं प्लेग की चपेट में आ गयीं। प्लेग ने इस महान शिक्षक और मानवता की सेविका को 10 मार्च 1897 को सदा के लिए मौत के आगोश में सुला दिया।

चिता को आग देने वाली पहली महिला

28 नवम्बर 1890 को राष्ट्र पिता महात्मा ज्योतिबा फूले का परिनिर्वाण हुआ। हजारों साल की परम्परा तोड़कर उन्होंने खुद ज्योतिबा की चिता को अग्नि दी। चिता को अग्नि देकर सामाजिक बेड़ियाँ तोड़ने वाली वह पहली महिला हैं। चिता में अग्नि देकर पुरूषों के एकाधिकार को सावित्रीबाई फूले ने चुनौती दी। साथ ही, उन्होंने ज्योतिबा के अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए संकल्प लिया।

विधवा विवाह कराकर ब्राह्मणों को चुनौती

विधवा विवाह को हिन्दू धर्म में महापाप माना जाता है। हिन्दू धर्म के अनुसार विधवा को पति के साथ चिता पर जलने की प्रथा को उसे स्वर्ग में स्थान दिलाता है। इस मान्यता के अनुसार सवर्णों विशेषकर ब्राह्मण एवं क्षत्रियों में विधवा होने पर पति के साथ ही चिता पर जला दिया जाता था। भारत के इतिहास में इस सड़ी व्यवस्था को महिमा मंडित किया जाता था। इस व्यवस्था को चुनौती देते हुए सावित्रीबाई फूले ने पहली बार किसी विधवा का पुनर्विवाह कराया। इतना ही नहीं, एक विधवा गर्भवती ब्राह्मण महिला काशीबाई का उन्होंने प्रसूति कराया और उस बालक को गोद लिया। उस बालक को पढ़ा–लिखाकर डॉक्टर बनाया।

कवयित्री सावित्रीबाई फूले

उन्होंने समाज की वेदना को बहुत ही गहराई से महसूस किया और उनके अंतःकरण से कविता लावा बनकर फूट पड़ी। उन्होंने कविता लिखी और उसका प्रकाशन भी कराया। उनका पहला काव्य संग्रह 1854 में प्रकाशित हुआ। वे 1891 में 'बावन कोशी सुबोध रत्नाकर' प्रकाशित करायीं। उनका पूरा जीवन समाज में वंचित तबके, खासकर महिलाओं और दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष में बीता। उनकी एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता है जिसमें वह सबको पढ़ने

लिखने की प्रेरणा देकर जाति तोड़ने और ब्राह्मणवादी ग्रंथों को फेंकने की बात करती हैं। 1892 में सावित्री बाई फूले ने कुछ किताबों का संपादन भी किया, इनमें चार पुस्तकें ज्योतिबा फूले के भारतीय इतिहास पर व्याख्यान विषय पर थी। उन्होंने खुद के भाषणों का सम्पादन भी किया है।

आधुनिक भारत का पहला अन्तरजातीय विवाह

उन दिनों भारत में जातिवाद और छुआछूत चरम था। एक जाति का दूसरी जाति के साथ भोजन करना तो संभव ही नहीं था, पास से गुजरने पर भी अपवित्र होने का भय रहता था। ऐसे में एक जाति का दूसरी जाति के साथ रोटी और बेटी का संबंध होना युगान्तरकारी घटना ही कहा जायेगा। सावित्रीबाई फूले ने अपने दत्तक पुत्र डॉ. यशवंतराव का विवाह ग्यानबा ससाणे की बेटी लक्ष्मी के साथ सत्यशोधक विवाह परंपरा से 4 फरवरी 1889 को सम्पन्न कराया। आधुनिक भारत का यह पहला अन्तरजातीय विवाह है।

सावित्रीबाई फूले के सम्मान में सरकार के कार्य

सवित्रीबाई फूले ने समाज सुधार और नारी शिक्षा के क्षेत्र में जिस मशाल को जलाया, उसकी प्रेरणा से आज लाखों महिलाएँ शिक्षा पाकर विकास के हर क्षेत्र में इतिहास रच रही हैं। परन्तु उनकी महान विरासत को सम्मानित होने में लगभग 100 वर्ष का समय लग गया। इसे यह भी कहा जा सकता है कि जिस असमानता और छुआछूत के खिलाफ उन्होंने आन्दोलन चलाया, उसके सम्मान को भी असमानता का शिकार होना पड़ा। सन् 1983 में उनके सम्मान में पूणे सिटी कॉरपोरेशन द्वारा स्मारक बनवाया गया। भारत सरकार ने 10 मार्च 1998 को उनके सम्मान में डाक टिकट जारी किया। महाराष्ट्र सरकार ने 2015 में पूणे विश्वविद्यालय का नाम सावित्रीबाई फूले पूणे विश्वविद्यालय किया। गुगल ने भी 3 जनवरी 2017 को उनकी 186वीं जयंती मनायी थी। आज महाराष्ट्र सरकार द्वारा दलितों और पिछड़ों के लिए संचालित अनेक योजनाओं का संचालन समाज सुधारक सावित्रीबाई फूले के नाम से किया जा रहा है।

सावित्रीबाई फूले ने भारत में नारियों की शिक्षा का द्वार खोलकर उन्हें विकास और सशक्तीकरण के क्षेत्र में आगे लाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है किन्तु तथाकथित प्रगतिशील महिलाएँ भी उनके योगदान को नहीं जानती हैं।

सामाजिक क्रांतिकारी बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर

एक नन्हा सा बालक अपनी बुआ के साथ नाई की दुकान पर बाल कटाने जाता है और नाई उसे डांटकर भगा देता है। वह रोते हुए घर जाता है। फिर बुआ घर में ही उसका बाल काटती है। एक बालक विद्यालय जाता है, उसे विद्यालय के दरवाजे के बाहर बैठाया जाता है। उसे अपने बैठने के लिए टाट घर से खुद लानी होती है। वह बालक पढ़ने में होशियार है। एक दिन एक शिक्षक बच्चों से गणित का एक सवाल हल करने को कहते हैं। जब कोई उसे हल नहीं कर पाता है तो शिक्षक बाहर बैठे उस बालक को ब्लैक बोर्ड के पास बुलाते हैं किन्तु यह क्या, बच्चा ब्लैक बोर्ड के पास पहुँचे, उसके पहले कक्षा के सभी छात्र चिल्लाने लगे। शिक्षक से अनुरोध करने लगे, उसे रोकिए। मानो विद्यालय में भूचाल आ गया हो। छात्रों ने कहा, 'ब्लैक बोर्ड के पीछे हमारा भोजन रखा हुआ है, वह अपवित्र हो जायेगा। वह बालक महार है।' जब सभी छात्र अपने भोजन का सामान ब्लैक बोर्ड के पास से हटा लिए, तब उस बालक ने शिक्षक के सवाल को कुशलता के साथ ब्लैक बोर्ड पर हल किया। उस बालक को पीने के लिए पानी घर से ही लाना पड़ता। जिस दिन वह घर से पानी लाना भूल जाता, उसे प्यासा ही रहना पड़ता था। अथवा, नल की टोंटी चपरासी के खोलने पर नल के नीचे से पानी पी सकता था। उसे नल छूने की मनाही थी। एक दिन उस बालक को विद्यालय में प्यास लगी किन्तु चपरासी छुट्टी में रहने के कारण उसे पूरे दिन विद्यालय में प्यासा ही रहना पड़ा। रेलवे स्टेशन से बैल गाड़ी पर घर जाने के दौरान जब गाड़ीवान को पता चला कि यह बालक महार है तो उसे धक्का देकर नीचे उतार दिया। बहुत निवेदन करने पर वह इस शर्त पर गाड़ी पर ले गया कि गाड़ी को वे स्वयं हांकेंगे और वह नीचे पैदल चलेगा। इन सभी घटनाओं से उस बालक के मन में समाज की व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव भर रहा था और वह मन ही मन समाज की इस सड़ी – गली व्यवस्था को जड़ से समाप्त करने के लिए संकल्प ले रहा था, वही बालक आगे चलकर डॉ. भीम राव रामजी अम्बेडकर के नाम से विख्यात हुआ। उसने अपने बचपन के संकल्प को साकार करने के लिए शिक्षा को अपना शस्त्र बनाया और विश्व के नामी विश्वविद्यालयों से अनेक विषयों में ऊँची डिग्रियाँ हासिल कीं।

शिक्षा

डॉ. अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यप्रदेश में इन्दौर जिला के महू छावनी में हुआ था। उनके पिता का नाम रामजी सकपाल एवं माता का नाम भीमाबाई रामजी सकपाल था। उनकी प्राथमिक शिक्षा समारा, महाराष्ट्र में हुई तथा मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने एल्फिटेन हाई स्कूल बॉम्बे से 1907 में उत्तीर्ण की थी। संभवतः मैट्रिक उत्तीर्ण होने वाले वे पहले दलित हैं। उन्होंने 1909 में इंटरमीडियट की परीक्षा भी एल्फिटेन हाई स्कूल से ही उतीर्ण की थी। महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की छात्रवृति पाकर वे 1913 में न्यूयार्क के लिए रवाना हुए। यहाँ उनका नामांकन कोलम्बिया विश्वविद्यालय में हुआ। सन्1915 में उन्होंने अर्थशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। 1916 में उन्होंने भारत में जातियों की उत्पति एवं विकास नामक एक पुस्तक लिखी। जर्मनी के वॉन विश्वविद्यालय में उन्होंने संस्कृत की पढ़ाई की। लंदन के ग्रेज इन में उन्होंने बैरिस्टरी की पढ़ाई की। उन्होंने मास्टर ऑफ सायंस, डॉक्टर ऑफ सायंस, डि. लिट जैसी प्रतिष्ठित डिग्रियां विदेशों से हासिल की। धनंजय कीर ने लिखा है कि शिक्षा की भूख डॉ. अम्बेडकर को ऐसी थी कि विश्वविद्यालय की लाईब्रेरी में सबसे पहले जाते थे और सबसे बाद में निकलते थे।

विवाह

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का विवाह 1907 में रमाबाई वलांगावकर के साथ हुआ था। उस समय उनकी उम्र मात्र 13 वर्ष थी। रमाबाई विवाह के समय मात्र 9 वर्ष की थीं। जिस समय बाबा साहेब का विवाह हुआ, उसी वर्ष वे हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण हुए। उनके पुत्र यशवंत राव का जन्म 1912 में हुआ था। 2 फरवरी 1913 को बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के पिता सुबेदार रामजीराव का निधन हो गया। पिताजी की मृत्यु से बाबा साहेब काफी दुःखी हुए।

बड़ौदा राजा की नौकरी

छात्रवृति के एकरारनामे के अनुसार पढ़ाई खत्म होने के उपरांत बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को बड़ौदा राजा के यहां नौकरी करनी थी, जिसके लिए वे बड़ौदा गये। उन्हें सेना सचिव का कार्य दिया गया। यहां का अनुभव अच्छा नहीं रहा। उनका चपरासी फाईल फेंक कर उनके टेबल पर देता था। अन्य कर्मचारी उनसे दूर ही रहते थे। बड़ौदा में उन्हें रहने का घर नहीं मिला। जाति छुपाकर एक पारसी के घर में रहने को मिला किन्तु वह घर नहीं, स्टोर था, जिसमें चूहों की भरमार थी। जब पारसी मकान मालिक को उनकी जाति का पता चला तो उन्हें

घर से निकाल दिया। किसी तरह उनकी परेशानी की जानकारी बड़ौदा महाराज को हुई और उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को मुक्त कर दिया।

प्रोफेसर अम्बेडकर

बड़ौदा से बम्बई आने के बाद डॉ. अम्बेडकर को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए सिडनेहम कॉलेज, बम्बई में आमंत्रित किया गया। यह कार्य उनके मनोनुकूल था। उन्होंने छात्रों को मनोयोग से पढ़ाया। उनके लेक्चर सुनने दूसरे कॉलेज के भी छात्र आने लगे। यहाँ भी जाति के रोग ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। कॉलेज के घड़ा से केवल सवर्ण शिक्षक ही पानी पी सकते थे। इसका अम्बेडकर ने विरोध किया और उसी घड़ा से पानी पी लिए, जिसे सवर्णों ने अपने लिए रखा था। इसकी प्रतिक्रिया हुई। डॉ. अम्बेडकर ने अपने साथी शिक्षक को एक मंत्र सुनाया और कहा कि इसे पढ़कर पानी को शुद्ध कर लीजिए। उन्हें 2 जून 1928 को गर्वनमेंट लॉ कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया। बाद में उसके प्राचार्य बने। उन्होंने मई, 1938 में मुम्बई विधि महाविद्यालय के प्राचार्य पद से इस्तीफा दे दिया।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश

शाहूजी महाराज दलितों एवं पिछड़ों के साथ होने वाले भेदभाव से चिंतित रहते थे। वे चाहते थे कि डॉ.अम्बेडकर इसके लिए कुछ कार्य करें और इसके लिए लोगों में जागरूकता लायें। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को आर्थिक मदद की और उस मदद से डॉ. अम्बेडकर ने मूकनायक अखबार का प्रकाशन किया। यह अखबार डॉ. अम्बेडकर द्वारा अछूतों के सामाजिक और राजनैतिक लड़ाई का शंखनाद था। 1 मार्च 1920 को माणगांव, कोल्हापुर में अस्पृश्यता निवारण बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. अम्बेडकर ने की। 1920 में ही अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद, नागपुर में आयोजित हुई, जिसमें बाबा साहेब ने हिस्सा लिया।

पानी के लिए सत्याग्रह

भारत की समाज व्यवस्था बड़ी ही विचित्र रही है। समाज को चार वर्णों एवं 6743 जातियों में बांटा गया है। इन वर्णों एवं जातियों के क्रम के आधार पर श्रेष्ठ एवं निम्न निर्धारित किया गया है। शूद्रों को सबसे नीच माना गया है। किन्तु जातियों का एक ऐसा भी समूह रहा है, जिसे अस्पृश्य कहा गया है। उसे कोई भी मानवीय अधिकार नहीं दिया गया था। जिस तालाब से पशु और पक्षी पानी पी सकते थे, जिसमें कुत्ता और सुअर जैसे जानवर स्नान और पाखाना कर सकते थे, उस

तालाब का पानी शूद्र पीना तो दूर छू भी नहीं सकता था। डॉ. अम्बेडकर ने 18 मार्च 1927 को कुलाबा जिला बहिष्कृत परिषद् की बैठक बुलाई और महाड़ के चावदार तालाब से पानी पीने का निर्णय लिया। इसके लिए बड़ी संख्या में अछूत चावदार तालाब के पास आये। सबसे पहले पानी पीने के लिए डॉ. अम्बेडकर तालाब में उतरे। ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। भीड़ पर हमला हुआ। इसमें बाबा साहेब सहित सैकड़ों लोग घायल हुए। सभा को सम्बोधित करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि चावदार तालाब से पानी पीने से हम अमर नहीं हो जायेंगे। किन्तु इसका पानी पीकर हम साबित करना चाहते हैं कि पानी पर हमारा भी अन्य सवर्णों की तरह हक है। पानी के लिए दुनिया का यह पहला सत्याग्रह है।

मंदिर प्रवेश सत्याग्रह

भारतीय धर्म ग्रंथों के अनुसार शूद्र एवं अछूत मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। आज भी कुछ मंदिरों में शूद्रों के प्रवेश पर रोक है। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि मंदिरों में प्रवेश करने और देवताओं की पूजा करने से हमारा भाग्य नहीं बदलने वाला है। यदि वास्तव में भगवान है तो सदियों से हमारे साथ होने वाला भेदभाव उन्हें क्यों नहीं दिखाई दिया ? उन्होंने इस मिथक को तोड़ने के लिए 13 नवम्बर 1927 को अमरावती के अम्बा देवी मंदिर और 3 मार्च 1930 को काला राम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह किया। हजारों अछूतों के साथ वे कालाराम मंदिर पहुंचे किन्तु इस बात की जानकारी पुजारियों को हो गयी थी और उन्होंने मंदिर का दरवाजा बंद कर दिया। इसके बावजूद मंदिर में प्रवेश का प्रयास किया गया और इसमें सवर्णों के हमलो से कई लोग घायल हुए जिनमें बाबा साहब भी थे।

ब्राह्मणवादी ग्रंथों के खिलाफ आन्दोलन

संस्कृत को देव भाषा कहा गया है और बचपन में डॉ. अम्बेडकर को भारत में संस्कृत नहीं पढ़ने दिया गया। उन्होंने संस्कृत पढ़ने की लालसा को जर्मनी में जाकर पूरा किया। इसको पढ़ने के बाद उन्हें भारत के धर्मशास्त्रों में शूद्रों एवं अछूतों के खिलाफ किए गए षड्यंत्र का पता चल गया। उनका मानना था कि भारत में जातिवाद, छुआछूत, ऊँच और नीच तथा आर्थिक शोषण का कारण हिन्दू धर्मशास्त्र हैं। अतः इनकी सच्चाई को लोगों के बीच लाना चाहिए। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने 25 दिसम्बर 1927 को महाड़ में मनुस्मृति का सार्वजनिक रूप से दहन किया और उपस्थित जनसमूह को एक श्लोक को पढ़कर उसमें वर्णित बुराइयों से अवगत भी कराया। इस संबंध में उन्होंने एक किताब लिखी, जिसे 'हिन्दू धर्म की पहेलियाँ' के नाम से जाना जाता है।

समता दल का गठन

अछूतों एवं पिछड़ों के अधिकारों को दिलाने के लिए डॉ. अम्बेडकर को एक सशक्त संगठन की आवश्यकता महसूस हो रही थी, जो उनके बताये मार्ग पर चले और आन्दोलन को एक मुकाम तक ले जाए। अतः उन्होंने 4 सितम्बर, 1927 को समाज समता दल की स्थापना की। इस संगठन के लोग समाज के एक सिपाही की तरह कार्य करते।

पत्रकार डॉ. अम्बेडकर

भारत में आजादी की लड़ाई जोरों पर थी। अंग्रेजों द्वारा अपनी बातें आम जनता तक पहुँचाने के लिए अंग्रेजी अखबार का प्रकाशन किया जा रहा था और सवर्णों द्वारा हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में अखबार और पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा था। अछूतों एवं दलितों की समस्याओं के प्रति लोगों में जागरूकता का अभाव था। अतः 3 अप्रैल 1927 को डॉ. अम्बेडकर ने बहिष्कृत भारत नामक पाक्षिक का प्रकाशन किया। 29 जून 1928 को समता पाक्षिक और 24 नवम्बर 1930 को जनता साप्ताहिक का प्रकाशन किया। इनमें प्रकाशित तथ्यों से दलित और अछूतों की वास्तविक समस्याओं से अंग्रेजी सरकार निकटता से परिचित हुई।

साईमन कमीशन के सामने गवाही

अंग्रेजी सरकार ने भारत में अल्पसंख्यकों और दलितों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए सर जॉन साईमन की अध्यक्षता में एक आयोग भारत में भेजा। यह आयोग 1927 में भारत आया और भारत का भ्रमण करना शुरू किया। सवर्णों ने यह कहकर इसका विरोध किया कि इसमें कोई भारतीय सदस्य नहीं हैं। वास्तव में, उन्हें इस बात का अंदाजा हो गया था कि इस आयोग की अनुशंसा पर दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को बहुत से अधिकार मिल सकते हैं। इसलिए उन्होंने पिछड़ों और दलितों को गांधीवादी टोपी और धोती पहनाकर इसके विरोध में खड़ा कर दिया गया। वे लोग साईमन के सामने जोर –जोर से कहते कि हमारे साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता है। 23 अक्टूबर 1928 को डॉ. अम्बेडकर ने साईमन के सामने अछूतों की समस्याओं को गंभीरता से उठाया, जिसे साईमन ने अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया और यही कम्यूनल अवार्ड का आधार बना।

गोलमेज सम्मेलन में दहाड़

महात्मा गाँधी और अन्य हिन्दू नेताओं के विरोध के बावजूद 1930 –1932 में आयोजित प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय गोलमेज सम्मेलनों में डॉ. अम्बेडकर ने

अछूतों के प्रतिनिधि के तौर पर भाग लिए। महात्मा गाँधी ने कहा कि अछूतों सहित सभी हिन्दुओं और भारतीयों का एकमात्र प्रतिनिधि मैं हूँ। डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों के प्रतिनिधि के बतौर अपना पक्ष मजबूती के साथ रखा। उन्होंने कहा कि भारत की पूरी आबादी का हर पांचवा व्यक्ति अछूत है, जो इंसान के रूप में चलता –फिरता जानवर है। उसे अपनी भूख मिटाने के लिए कचड़ा में पड़े अन्न के लिए कुत्तों से झगड़ना पड़ता है। उसकी छाया मात्र से लोग अपवित्र हो जाते हैं। वह सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं पी सकता है। वह सार्वजनिक रास्ते पर चल नहीं सकता है। सार्वजनिक वाहनों पर वह सवारी नहीं कर सकता है। उसे कहने के लिए अपनी कोई मातृभूमि नहीं है। भारत की आजादी हमारे लिए मात्र सत्ता का हस्तांतरण साबित होगा। अंग्रेजी सरकार के बदले हमारे ऊपर हिन्दू शासन करेंगे। यह हमें मंजूर नहीं है। हमें आजाद भारत में स्वतंत्र मतदान और हमारे वोटों से हमारे प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार मिलना चाहिए। अतः उन्होंने आंकड़ों में सभी तथ्यों को विस्तार से बताया, जिसे लंदन के अखबारों ने विस्तार से छापा और अम्बेडकर की जमकर तारीफ की।

दो मतों का अधिकार

गोलमेज सम्मेलन के बाद अंग्रेजी सरकार ने कम्यूनल अवार्ड की घोषणा कर दी। इसमें दलितों को दो वोट देने का अधिकार मिला। एक वोट से वह सामान्य उम्मीद्वार का चुनाव करता और दूसरे वोट से वह केवल अपने उम्मीद्वार का चुनाव करता। इससे सामान्य सीट से चुना गया प्रतिनिधि हमारी समस्या के लिए आवाज उठाता और हमारे लिए कार्य करता। साथ ही, हमारे वोट से जीता हुआ हमारा प्रतिनिधि हमारे लिए प्रतिबद्ध होता। महात्मा गाँधी को इस व्यवस्था में हिन्दू समाज का विभाजन दिखाई देने लगा। इतना ही नहीं, उन्हें देश के विभाजन का खतरा लगने लगा। उन्होंने कहा कि मेरे जीवित रहते यह नहीं हो सकता। उन्होंने पूना के यरवदा जेल में आमरण अनशन कर दिया। अम्बेडकर को जान से मारने की धमकी भरा खत मिलने लगा। डॉ. अम्बेडकर को अपनी जान की परवाह नहीं थी। बाद में उन्हें दलितों की हत्या और उनके घरों को जलाने की धमकी से भरा पत्र मिलने लगा। समय तेजी से बीत रहा था। गाँधी की स्थिति खराब हो रही थी। अंत में ब्राह्मणवादियों को लगा कि डॉ. अम्बेडकर महिलाओं का सम्मान करते हैं और उन्होंने कमला बेन समेत अनेक महिलाओं का दल अम्बेडकर के पास भेज दिया। उन महिलाओं ने अम्बेडकर से अपने सुहाग की भीख मांगी। कोमल हृदय डॉ. अम्बेडकर को महिलाओं के सामने झुकना पड़ा और समझौता के लिए तैयार हो गये। 25 सितम्बर 1932 को यरवदा जेल में समझौता हुआ और दो वोट का अधिकार दलितों से छीना गया।

इस घटना को पूना समझौता या पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। गाँधी और अम्बेडकर के बीच हुए इसी समझौता से दलितों के लिए विधान सभाओं में सीटें आरक्षित करने पर सहमति बनी।

भीम प्रतिज्ञा एवं धर्मान्तरण

अछूतपन और भेदभाव की पीड़ा से डॉ. अम्बेडकर बचपन से पीड़ित थे। वे इसे जड़ से समाप्त करना चाहते थे। इसमें उनको बहुत सफलता नहीं मिल रही थी। अछूतों के प्रति हिन्दुओं के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आ रहा था। अतः उन्होंने येवला की सभा में घोषणा की कि मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ, यह हमारे वश में नहीं था किन्तु हिन्दू के रूप नहीं मरूँ, यह हमारे वश में है। इस प्रतिज्ञा के बाद विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को लगा कि अम्बेडकर धर्मान्तरण करने वाले हैं। वे उनसे मिलने लगे। डॉ. अम्बेडकर ने सभी धर्मों का गहन अध्ययन किया था। अतः वे प्रतिनिधि उनके सामने निरूतर हो जाते और निराश होकर वापस लौट जाते। वे 25 मई,1950 को विश्व बौद्ध परिषद कोलम्बो में उपस्थित हुए। 14 अक्टूबर, 1956 नागपुर के ऐतिहासिक कार्यक्रम में उपस्थित अपने 5 लाख अनुयायियों के साथ बाबा साहेब ने भंते महास्थविर चंद्रमणि के हाथों बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने 16 अक्टूबर, 1956 चन्द्रपुर में 2 लाख अनुयायियों को धर्म दीक्षा दी।

पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन

डॉ. अम्बेडकर को पुस्तकों से काफी प्रेम था। उनकी व्यक्तिगत पुस्तकालय में 50000 से ज्यादा पुस्तकें थीं। उन्होंने पत्र –पत्रिकाओं के सम्पादन के साथ ही अनेक तथ्यात्मक पुस्तकों का लेखन भी किया। मई 1936 में उनकी चर्चित पुस्तक 'जाति व्यवस्था का उच्छेद' प्रकाशित हुई। उन्होंने 31 मई 1936 में मराठी में मुक्ती कोण पथे विषय पर अपना भाषण लिखा। 1940 में उनकी पुस्तक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' का प्रकाशन हुआ जो रमाबाई को समर्पित किया गया है। उन्होंने 19 जनवरी, 1943 पूणे में अपना विख्यात भाषण रानाडे, गांधी और जिन्ना विषय पर दिया। उन्होंने जून 1945 को 'कांग्रेस और गांधी जी ने अछूतों के लिए क्या किया?' को प्रकाशित किया। वे 1946 में 'शूद्र कौन थे?' किताब का प्रकाशन किया। अक्टूबर, 1948 को उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि अनटचेबल्स' प्रकाशित हुई। मई,1950 में 'बुद्ध और उनके धर्म का भविष्य' लेख महाबोधी संस्था के मासिक में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी प्रमुख पुस्तकों में 'हिन्दू धर्म की पहेलियाँ,' 'रिडल्स ऑफ रामा एंड कृष्णा', 'भगवान बुद्ध एवं उनका घम्म' आदि हैं।

विधान मंडल में प्रवेश

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर कानून के बड़े विद्वान थे। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि अपने लोगों का भला करना है तो विधान मंडल का सदस्य होना आवश्यक है। विधानमंडल में जाकर ही अपने लोगों के हितों का संरक्षण किया जा सकता है। अतः वे इसके लिए प्रयास करने लगे और 1927 को मुम्बई विधिमंडल के सदस्य चुने गये। विधानमंडल के सदस्य रहते हुए उन्होंने अछूतों के लिए सार्वजनिक कुओं एवं तालाबों से पानी पीने जैसे अनेक अधिकार दिलाये। 1929 में अस्पृश्यों के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण रखने के बारे में विधानमंडल में भाषण किया। वे 17 फरवरी को मुम्बई असेम्बली चुनाव में विजयी हुए। 17 सितम्बर, 1937 को कोकीन की खेती नष्ट करने हेतु मुम्बई विधान भवन में विधेयक रखा। उनके द्वारा सितम्बर 1938 में औद्योगिक विवाद का विधेयक मुम्बई विधिमंडल में रखा गया।

गवर्नर जनरल की कार्यकारी मंडल में श्रम मंत्री

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को 1942 में गवर्नर जनरल की कार्यकारी मंडल में श्रम मंत्री चुना गया। वे इस पद पर 1942 से 1946 तक रहे। उस समय कारखानों में मजदूरों से 18 घंटे काम लिया जाता था। डॉ. अम्बेडकर ने श्रम मंत्री के रूप में तत्कालीन श्रम विधानों में व्यापक बदलाव लाया। फलतः आज श्रमिक प्रतिदिन 8 घंटे और सप्ताह में 48 घंटे काम करते हैं। श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक सुरक्षा मिलती है। महिलाओं को रात की पाली में काम करने से मना किया गया है। बच्चों के नियोजन के लिए उसकी उम्र की सीमा एवं काम की दशाओं से संबंधित स्थायी आदेश का प्रावधान है। महिलाओं को मातृत्व अवकाश एवं अन्य सुविधाएँ मिलती हैं। इन सभी का श्रेय डॉ. अम्बेडकर को ही जाता है। भारत के आजाद होने के बाद 1947 में डॉ. अम्बेडकर भारत के पहले कानून मंत्री बनाये गये।

सामाजिक– राजनीतिक संगठनों के जनक

डॉ. अम्बेडकर को ऐसा लगने लगा था कि सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार के लिए राजनीतिक और सामाजिक संगठनों का होना आवश्यक है। अतः उन्होंने 15 अगस्त 1936 को 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' का गठन किया। उन्होंने 12 से 13 फरवरी 1938 को मनमाड में अस्पृश्य रेलवे कामगार परिषद में भाग लिया। उन्होंने 7 नवम्बर 1938 को स्वतंत्र मजदूर पक्ष का सत्याग्रह किया। जनवरी 1939 में महाड़ किसान परिषद् की अध्यक्षता करते हुए कांग्रेस के किसान विरोधी नीति की आलोचना की। अप्रैल 1942 में उन्होंने आल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट

फेडरेशन की स्थापना की। उन्होंने 19 जुलाई 1942 को भारतीय दलित वर्ग संघ, नागपुर के सम्मेलन में भाग लिया। 20 जून 1946 को डॉ. अम्बेडकर ने मुम्बई में सिद्धार्थ महाविद्यालय, पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की। 19 जून 1950 को उन्होंने औरंगाबाद में मिलिन्द महाविद्यालय की स्थापना की।

संविधान सभा में प्रवेश

यद्यपि कांग्रेस यह नहीं चाहती थी कि डॉ. अम्बेडकर संविधान सभा में प्रवेश कर सकें। किन्तु ऐसा हो नहीं सका। बंगाल के नेता जोगिन्दर मंडल ने उन्हें खुलना से चुनाव लड़ने के लिए आमंत्रित किया और वे चुनाव जीत गए। बाद में उस क्षेत्र को पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया और डॉ. अम्बेडकर की संविधान सभा की सदस्यता समाप्त हो गयी। महात्मा गाँधी के कहने पर नेहरू ने बुम्बई के एक मुस्लिम सदस्य को इस्तीफा दिलाकर उन्हें संविधान सभा का सदस्य बनवाया।

मसौदा समिति के अध्यक्ष एवं संविधान

अब तक भारत के सभी नेता डॉ. अम्बेडकर की प्रतिभा के कायल हो चुके थे। अतः संविधान सभा ने उन्हें 29 अगस्त 1947 को संविधान मसौदा समिति का अध्यक्ष चुना। उन्होंने अपनी मेहनत, चतुराइ, विद्वता, वाक्पटुता और तर्कशीलता के बल पर इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न किया। उन्होंने विश्व का सबसे वृहद् संविधान देश को दिया। कहने के लिए संविधान की मसौदा समिति में सात सदस्य थे किन्तु वास्तव में संविधान डॉ. अम्बेडकर ने ही लिखा, जिसका उल्लेख संविधान सभा की कार्यवाही में उपलब्ध है। 25 नवम्बर 1949 को संविधान सभा में बोलते हुए कहा कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो अंततः बुरा साबित होगा, यदि इसका पालन कराने वालों की नीयत अच्छी नहीं हो। संविधान कितना भी बुरा क्यों न हो, अंततः अच्छा साबित होगा, यदि उसे पालन कराने वाले अच्छे हों। उन्होंने आगे कहा कि आज हम दोहरे जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। हमें राजनीतिक जीवन में समानता होगी किन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता रहेगी। हमने अगर शीघ्र ही सामाजिक और आर्थिक समानता हासिल नहीं की तो हमारा गणतंत्र सुरक्षित नहीं रह सकेगा। आज यह सत्य हो रहा है।

कानूनमंत्री पद से इस्तीफा

डॉ. अम्बेडकर भारत में समाज सुधार के लिए अन्तर्जातीय विवाह को बहुत महत्वूपर्ण समझते थे। उनका मानना था कि भारत से जातिवाद को समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाह आवश्यक है। वे चाहते थे कि भारत में एक समान

नागरिक संहिता हो, जिससे देश की सामाजिक विषमता को दूर किया जा सके। उन्होंने पं0 जवाहरलाल नेहरू से इस संबंध में विमर्श किया और हिन्दू कोड बिल तैयार किया। इसके पारित होने से महिलाओं एवं शूद्रों के सामाजिक जीवन में काफी बदलाव की संभावना थी। किन्तु एन वक्त पर नेहरू ने इसे संसद में रखने से मना कर दिया। अतः 17 सितम्बर, 1951 को हिन्दू कोड बिल और ओ.बी.सी. आरक्षण लागू नहीं होने के कारण उन्होंने इस्तीफा दे दिया। आजाद भारत में मंत्रीमंडल से इस्तीफा देने वाले डॉ. अम्बेडकर पहले नेता हैं। जनवरी सन् 1952 में हुए आम चुनाव में बाबा साहेब कांग्रेस की ओछी राजनीति के कारण हार गए किन्तु मार्च 1952 में महाराष्ट्र से राज्य सभा के लिए चुने गए।

विभिन्न संगठनों द्वारा सम्मान

भारत का संविधान लिखने के कारण चर्चा में आये डॉ. अम्बेडकर को कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने 5 जून 1952 को डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि देकर सम्मानित किया। आज उस विश्वविद्यालय के प्रवेश द्वार पर डॉ. अम्बेडकर की मूर्ति लगी है, जिस पर सिम्बल ऑफ नॉलेज अंकित किया गया है। उस्मानिया विश्वविद्यालय ने उन्हें 12 जनवरी 1953 को डॉक्टर ऑफ लिटेरेचर उपाधि से सम्मानित किया है। 30 जनवरी 1954 को उन्हें महात्मा फूले का चित्रपट उद्घाटन हेतु आमंत्रित किया गया था। 'मेरा तत्व ज्ञान' पर भाषण देने के लिए 3 अक्टूबर 1954 को आमंत्रित किया था। दिसम्बर 1954 को विश्व बौद्ध परिषद्, रंगून में उन्हें आमंत्रित किया गया था।

परिनिर्वाण

संविधान तैयार करने में किए गए परिश्रम के कारण डॉ. अम्बेडकर काफी अस्वस्थ हो गए थे। उन्हें उच्च रक्त चाप और मधुमेह की बीमारी हो गयी थी। बीमारी की स्थिति में भी वे भगवान बुद्ध एवं उनका धम्म नामक पुस्तक लिखने में व्यस्त थे। 6 दिसम्बर 1956 को इस पुस्तक का लिखना पूर्ण हुआ और उसी रात उनका महापरिनिर्वाण 26 अलीपुर रोड, दिल्ली के उनके आवास में हो गया। यद्यपि कुछ लोग इस मौत को अस्वाभाविक मानते हैं किन्तु करोड़ों दलितों और शोषितों के मसीहा अपने लोगों को रोता बिलखता छोड़ हमेशा के लिए चिर निद्रा में सो गया। नेहरू ने कहा, दलितों – शोषितों की एक ज्योति जो हमेशा – हमेशा के लिए बुझ गई। उनका अंतिम संस्कार बौद्धधर्म की विधि के अनुसार मुम्बई के दादर चौपाटी लक्षागृह में किया गया और इसके साक्षी लगभग छः लाख लोग बने।

बहुजन नायक मान्यवर कांशीराम

रक्षा अनुसंधान संस्थान, पूना का एक उपनिदेशक अपने सरकारी दफ्तर में कुछ संचिकाओं में खोया हुआ है। उसे नहीं मालूम कि दलित क्या होता है? उसे नहीं मालूम कि दलितों का अपमान कैसे होता है? उसे नहीं मालूम कि डॉ. अम्बेडकर कौन हैं और उन्होंने दलित समाज के लिए क्या किया है? वह केवल यह जानता है कि डॉ. अम्बेडकर भारत के संविधान ड्रॉफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन थे। पेशा के अनुसार वह वैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनुसंधान में सदैव लगे रहने वाले उस रक्षा अधिकारी को समाज के चिंतन की कोई जरूरत भी नहीं थी। उसका जन्म सिख समुदाय में होने के कारण उसे हिन्दू धर्म की असमानता का कोई अनुमान नहीं था। वह अपने पेशा के प्रति पूरा ईमानदार एवं काम के प्रति वफादार था। अतः अपने कार्यालय में रक्षा संबंधी किसी संचिका में वह तल्लीन था। उसी समय रक्षा अनुसंधान संस्थान में कार्यरत एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी दीनाभना उनके पास आता है। वह कहता है कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की जयंती की छुट्टी को समाप्त कर दिया गया है और उसके बदले में रामनवमी की छुट्टी दी गयी है। यह दलित महापुरुष का अपमान है। नये निदेशक मिश्रा जी ने ऐसा किया है। आप भी दलित समाज से आते हैं, इसलिए आप हमारी मदद करें। वह उपनिदेशक अपने कार्यालय के दीनाभना से डॉ. अम्बेडकर के बारे में बताने को कहता है। दीनाभना ने बताया कि भारत के संविधान के शिल्पकार बाबा साहेब नहीं होते तो हमें आरक्षण नहीं मिलता तो हम कर्मचारी और पदाधिकारी नहीं होते। हमें तो पानी पीने तक का अधिकार बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने दिलाया है। उनकी जयंती की छुट्टी को समाप्त करना निदेशक की ब्राह्मणवादी सोच का परिणाम है। दीनाभना ने डॉ. अम्बेडकर की लिखी 'जातियों का उच्छेद' नामक एक किताब उस पदाधिकारी को दी। कर्मचारी के आवेदन को लेकर वह पदाधिकारी निदेशक के कमरे में पहुँचा और छुट्टी की पुनः बहाली के लिए अनुरोध वाले पत्र को देते हुए विचार करने के लिए कहा। निदेशक ने कहा कि आप नहीं जानते कि डॉ. अम्बेडकर कौन हैं ? उसने कहा,"Ambedkar was a man". वह पदाधिकारी गुस्से से लाल हो गया और अपने वरीय अधिकारी की जमकर पिटाई की। इस घटना के बाद दीनाभना

को निलम्बित कर दिया गया। यह घटना 1965 की है। मुकदमा चलने लगा। उस पदाधिकारी ने इसके खिलाफ संघर्ष का मन बना लिया और डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करने लगा। दीनाभना की मुकदमे में जीत हुई। उसे नौकरी में रख लिया गया किन्तु उस पदाधिकारी ने 1971 में अपनी नौकरी छोड़ दी। अपने एक सहकर्मी के साथ उसने दलित और पिछड़े कर्मचारियों के कल्याण के लिए संगठन बनाया, जिसे अनुसूचित जाति, जन जाति, अन्य पिछड़ी जाति एवं अल्पसंख्यक कर्मचारी कल्याण संस्था के नाम से जाना गया। वह पदाधिकारी कोई और नहीं मान्यवर कांशीराम हैं, जिन्हें बहुजन नायक, मान्यवर और साहेब कह लाखों लोग संबोधित करते हैं।

जन्म एवं शिक्षा

मान्यवर कांशीराम का जन्म पंजाब के रोपड़ जिला के खवासपुर गाँव में 15 मार्च 1934 को एक रामदासी सिख परिवार में हुआ था। चमार या रविदासी समाज से सिख धर्म अपनाने वालों को रामदासी के नाम से जाना जाता है। इनके पिता का नाम हरि सिंह और माता का नाम श्रीमती बिशन कौर था। कांशीराम दो भाई और चार बहनों में सबसे बड़े थे। यद्यपि उनके पिताजी अल्प शिक्षित थे किन्तु उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षित बनाया था। अपने परिवार में कांशीराम सबसे अधिक पढ़े लिखे थे। 1958 में बी.एस.सी. किया और उसके बाद भारतीय रक्षा अनुसंधान परिषद, पूना में वे सहायक वैज्ञानिक के पद पर नियुक्त हुए।

भीम प्रतिज्ञा

सन् 1971 में नौकरी छोड़ने के बाद मान्यवर कांशीराम ने समाज सेवा और बहुजनों के उत्थान हेतु संकल्प लिया। उन्होंने निम्नांकित भीम प्रतिज्ञा की :–

1. आजीवन विवाह नहीं करूँगा। अपने घर नहीं जाऊँगा।
2. अपने नाम से कोई भी चल और अचल संपति नहीं रखूँगा।
3. किसी के शादी – विवाह और श्राद्ध में भाग नहीं लूँगा।

इस भीम प्रतिज्ञा के बाद उन्होंने अपनी माँ को 21 पन्ने का पत्र लिखा और उसमें अपने निर्णय का विस्तार से उल्लेख किया। परिवार के लोगों ने कांशीराम का विवाह तय कर दिया और विवाह के लिए माँ ने एक पत्र भेज कर घर बुलाया किन्तु कांशीराम घर नहीं गये। अंत में विवाह टूट गया। कांशीराम अपनी भीम प्रतिज्ञा पर आजीवन अटल रहे।

कुशल संगठनकर्त्ता

सर्वप्रथम मान्यवर कांशीराम ने बाबा डॉ. अम्बेडकर के साहित्यों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया और महाराष्ट्र के विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक संगठनों की कार्यशैली से परिचित होने का प्रयास किया। वे आर.पी.आई से भी जुड़े किन्तु शीघ्र ही उससे उनका मोहभंग हो गया। आर.पी.आई. अनेक घड़ों में विभाजित हो चुकी थी और सब एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे थे। उनमें सुधार की कोई संभावना नहीं थी। अतः उन्होंने उसे छोड़ दिया। मान्यवर कांशीराम को इन संगठनों से जुड़ने और अम्बेडकरी साहित्यों के अध्ययन से यह समझ बन गयी थी कि बाबा साहेब के अधूरे सपने को पूरा करना हमारा कर्तव्य है। इसके लिए उन्होंने स्वयं मार्ग बताया है। उनका परमादेश है कि लोगों को शिक्षित करो, लोगों को आन्दोलित करो और लोगों को संगठित करो। इसके लिए समाज के पढ़े–लिखे लोगों से 'पे बैक टू सोसायटी' का आह्वान करो। इस आधार पर ही उन्होंने पढ़े–लिखे अनुसूचित जाति, जन जाति, अन्य पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक समाज को संगठित करना आवश्यक समझा। इसके लिए उन्होंने एक संगठन बनाया जो 'बैकवर्ड (एस.सी., एस.टी, ओ.बी.सी.) एवं माईनरीटीज कम्युनिटीज इम्पलाईज फेडरेशन' के नाम से जाना जाता है। उनका मानना था कि देश में दलितों एवं पिछड़ों के कर्मचारी संगठन बहुत हैं जो कर्मचारियों के हित के लिए कार्य करते हैं। अतः यह संगठन उन कर्मचारियों का, कर्मचारियों के द्वारा होगा किन्तु कर्मचारियों के लिए नहीं होगा। यह संगठन कर्मचारी जिस समाज से वे आते हैं, उसके उत्थान के लिए कार्य करेगा। कर्मचारी मनी, माईण्ड एवं टाइम देकर समाज को तैयार करने का कार्य करेंगे। बामसेफ का गठन उन्होंने 6 दिसम्बर सन् 1973 को किया। किन्तु 6 दिसम्बर सन् 1978 में बामसेफ का विधिवत–गठन किया एवं कार्यालय दिल्ली में स्थापित किया गया। अब यह संगठन अनेक समूहों में बंट गया है।

कर्मचारियों के संगठन के बाद मान्यवर कांशीराम ने यह महसूस किया कि सामाजिक चेतना और सामाजिक आन्दोलन के लिए दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदाय का एक मजबूत संगठन होना चाहिए क्योंकि कर्मचारी मनी, माईण्ड और टाइम दे सकते हैं किन्तु सामाजिक आन्दोलनों में भाग नहीं ले सकते हैं। अतः उन्होंने 6 दिसम्बर 1982 को 'दलित शोषित समाज संघर्ष समिति' (डी.एस 4) का गठन किया। बहुत कम समय में यह संगठन देश में अपनी पहचान बनाने में सफल हुआ।

बहुजन समाज पार्टी का गठन

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, '' राजनीतिक शक्ति एक मास्टर चाबी है, जो विकास के हर बंद ताले को खोल सकती है।'' इस सूत्र वाक्य से मान्यवर कांशीराम भलीभांति परिचित थे। अतः वे दलितों और बहुजनों को राजनीतिक शक्ति दिलाने हेतु राजनीतिक दल का गठन करना चाहते थे। उन्होंने 14 अप्रैल 1984 को 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन किया। अब कांशीराम की पहचान एक सामाजिक कार्यकर्ता के साथ ही राजनीतिक नेता के रूप होने लगी। किन्तु 1986 में उन्होंने अपने ही बनाये अन्य संगठनों पर कम और बहुजन समाज पार्टी की मजबूती के लिए अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया। बहुजन समाज पार्टी ने कांग्रेस के आधार वोट को अपनी तरफ खींच लिया, जिससे कांग्रेस काफी कमजोर हो गयी। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने कांग्रेस को मदद करने के लिए मान्यवर कांशीराम से समझौता करना चाहा किन्तु असफल रहे। अतः उन्होंने कांशीराम के खास माने जाने वाले तेजीन्दर सिंह झल्ली को मनाकर 1989 में बामसेफ का निबंधन करा दिया। इससे बामसेफ कमजोर हो गया। इसके बावजूद मूल बामसेफ अभी बी.एस.पी. को मदद करती है।

बहुजनों की राष्ट्रीय पार्टी

मान्यवर कांशीराम एक कुशल संगठनकर्ता थे। वे प्रभावशाली नारा गढ़ने में माहिर थे। उन्होंने नारा दिया, 'जो जमीन सरकारी है, वो जमीन हमारी है।' यह नारा बहुजन समाज को सरकारी जमीन पर उनके दावे को मजबूत करने वाला और लोक लुभावन भी था। इसी प्रकार उन्होंने कहा, 'जिसकी संख्या जितनी भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी'। 'वोट हमारा राज तुम्हारा, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा'। 'जो बहुजन की बात करेगा, वो दिल्ली पर राज करेगा'। ब्राह्मणवाद के विरोध के तौर पर एक नारा बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था जिसके कारण उनकी आलोचना भी की जाती है किन्तु इसने समाज को झकझोर दिया था और बहुजनों को तेजी से संगठित होने में मददगार सबित हुआ था। वह नारा था, 'तिलक, तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार'। इन नारों के कारण बहुजन समाज के लोग काफी तेजी से संगठित होने लगे और शीघ्र ही बहुजन समाज पार्टी की राष्ट्रीय पार्टी की पहचान बन गयी और भाजपा और कांग्रेस के बाद तीसरे नम्बर की पार्टी हो गयी। यह मान्यवर कांशीराम की सगठन क्षमता को दर्शाता है। यह उनकी संगठन क्षमता का ही परिणाम है कि बहुजन समाज पार्टी का उत्तर प्रदेश जैसे देश के बड़े राज्य में शासन करना संभव हो पाया यद्यपि

मान्यवर कांशीराम बहुजन समाज पार्टी को देश की एक नम्बर की पार्टी बनाना चाहते थे किन्तु उनके जीवित रहते यह संभव नहीं हो सका।

मंडल कमीशन लागू करो आन्दोलन

प्रायः सभी लोग यह जानते हैं कि मंडल कमीशन को प्रधानमंत्री श्री वी.पी.सिंह ने लागू किया। इसे लागू कराने में श्री शरद यादव और श्री रामविलास पासवान में इसका श्रेय लेने की होड़ रही है। ये सभी लोग मंडल मसीहा के नाम से जाने जाते हैं। वास्तव में पिछड़ों को शैक्षणिक एवं सामाजिक पिछड़ापन के आधार पर आरक्षण देने का प्रयास आजादी के बाद से होने लगा था। इसके लिए सबसे पहले काका कालेलकर कमीशन का गठन किया गया था। जिसने तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू को अपना प्रतिवेदन सौंप दिया था। उसमें देश की लगभग 55 प्रतिशत आबादी को पिछड़ा माना गया था तथा उनको आरक्षण देने की अनुशंसा की गयी थी। तत्कालीन सरकार ने उस पर नोट ऑफ डिसेंट लिखकर रख दिया। केन्द्र में जब जनता पार्टी की सरकार बनी तो एक बार फिर से पिछड़ों को आरक्षण देने की आवाज बुलंद हुई थी। इसके लिए श्री वी.पी.मंडल की अध्यक्षता में एक आयोग बना, जिसे मंडल आयोग के नाम से जाना जाता है। इसने भी पिछड़ों को 52 प्रतिशत आरक्षण देने की अनुशंसा की। एक बार पुनः इस अनुशंसा को अलग रख दिया गया।

मान्यवर कांशीराम ने पिछड़ों को आरक्षण दिलाने के लिए और मंडल कमीशन को लागू करने के लिए 45 दिनों का धरना बोट क्लब पर दिया और पार्लियामेंट को घेरने का कार्य किया गया। देश के सभी राज्यों की राजधानी में बहुजन समाज पार्टी ने धरना दिया। धरना के दौरान ही एक घटना घटी। श्री वी.पी.सिंह की सरकार से चौधरी देवीलाल अलग हो गये और पिछड़ों का एक सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया। इसमें मान्यवर कांशीराम को भी आमंत्रित किया गया। इस सम्मेलन के सफल होने के दबाव ने श्री वी.पी.सिंह को मंडल कमीशन लागू करने हेतु मजबूर कर दिया। उस ऐतिहासिक धरना में मैं स्वयं भी पटना स्टेशन पर सम्मिलित हुआ था।

राजनीति में योगदान

भारत की राजनीति में मान्यवर कांशीराम के योगदान का मूल्यांकन नहीं हुआ है। वास्तव में मान्यवर कांशीराम ने भारत की राजनीति से कांग्रेस के पैर के नीचे से जमीन खींच ली। उसका वोट बैंक बने दलित और मुसलमानों के कांग्रेस से अलग होने का ही परिणाम है कि आज कांग्रेस पार्टी अपने अस्तित्व के लिए

संघर्ष कर रही है। लगभग 70 वर्ष तक देश पर शासन करने वाली पार्टी को विपक्ष का नेता बनने लायक भी सांसद नहीं जीत पाने की परेशानी हो रही है, उसका एकमात्र श्रेय कांशीराम को जाता है। उनके आन्दोलन और बहुजन समाज के संगठित होने का ही परिणाम है कि आज देश में अनेक राज्यों में पिछड़ों की सरकार है। बसपा के दबाव का ही परिणाम है कि पंजाब में कांग्रेस को एक दलित को मुख्यमंत्री स्वीकार करना पड़ा। मान्यवर कांशीराम आजीवन अविवाहित रहकर दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को हुक्मरान बनाने हेतु उन्हें संगठित करते रहे। बहुत सी जातियों में उन्होंने सत्ता में भागीदारी की भूख पैदा की। उनके चाहने वाले नारा लगाते है, कांशीराम तेरी नेक कमाई, तूने सोती कौम जगायी। यद्यपि बहुजनों में सत्ता की भूख बढ़ी है किन्तु आज यह भूख उन्हें विभाजित कर जमात के बजाए जाति के नेता के तौर पर स्थापित करने में लगी है।

साइकिल से संगठन

आज हर तरफ पैसा का बोल बाला है। राजनीति को पैसा का खेल बना दिया गया है। आज लोग हर चौक चौराहे पर यह कहते हुए मिल जायेंगे कि राजनीति मात्र पैसों का खेल है। अब तो लखपति होने से भी राजनीति में काम नहीं चलेगा। राजनीति करने के लिए करोड़ों होना चाहिए। परन्तु मान्यवर कांशीराम एक ऐसे नेता हैं, जिन्होंने राजनीति में पैसे वालों का मुकाबला साइकिल से किया। उन्होंने 'एक नोट और एक वोट' के नारे को चरितार्थ किया। स्वयं उन्होंने कन्या कुमारी से कश्मीर तक और पुरी से पोरबंदर तक की साइकिल यात्रा की। उनके कार्यकर्ता साइकिल से संगठन का कार्य करते थे। वे साइकिल से चलकर बहुजन समाज पार्टी को देश की तीसरे नम्बर की पार्टी बना दिए।

सांसद कांशीराम

मान्यवर कांशीराम 1991 में इटावा से पहली बार सांसद चुने गए। इस चुनाव में माननीय मुलायम सिंह ने उनकी भरपूर मदद की थी। किन्तु कांशीराम ने जसवंतनगर सीट पर बसपा का कोई प्रत्याशी नहीं देकर उनकी जीत पक्की की थी। कांशीराम ने इस चुनाव में भाजपा प्रत्याशी लाल सिंह वर्मा को हराया था। सन् 1996 में दूसरी बार वे पंजाब के होशियारपुर से सांसद चुने गये। एक बार वह इलाहाबाद के फूलपुर से अपने ही राजनीतिक शिष्य सोनेलाल पटेल से चुनाव हार गये थे। कांशीराम बहुजनों को सत्ता में लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने कहा कि यदि 'यादवों की लाठी और चमारों का दिमाग' मिल जाये तो

इन्हें हुक्मरान बनने से कोई नहीं रोक सकता। 1993 में मुलायम सिंह यादव और कांशीराम ने उत्तरप्रदेश का चुनाव मिल कर लड़ा। नारा लगा, 'मिले मुलायम–कांशीराम, हवा में उड़ गये जय श्रीराम'। उत्तर प्रदेश में सपा और बसपा गठबंधन की सरकार बनी। किन्तु कांशीराम का सफल प्रयोग ज्यादा दिन तक नहीं रह सका। गेस्ट हाउस कांड ने दोनों दलों को दुश्मन बना दिया। इसका दुरगामी परिणाम हुआ। वर्ष 2001 में कांशीराम ने सुश्री मायावती को सार्वजनिक मंच से अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। वे राज्य सभा के भी सदस्य रहे।

कांशीराम का व्यक्तित्व ऐसा था कि जब पहली बार वह संसद पहुँचे तो सभी सांसदों ने खड़ा होकर उनका स्वागत किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव ने उनसे हाथ मिलाकर उनका सम्मान किया। जब वे बोलने के लिए खड़े होते तो संसद में शांति छा जाती थी मानों सभी उनकी बातों को यादकर लेना चाहते थे।

कांशीराम का प्रमुख प्रकाशन

मान्यवर कांशीराम देश के अखबारों एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशकों को ब्राह्मण और बनियों के हित में प्रकाशित होने वाला मानते थे। उनका मानना था कि वे कभी भी बहुजन समाज के हित में नहीं सोचते हैं। वे बहुजनों के खिलाफ अफवाह ही फैलाते हैं। अतः उन्होंने स्वयं अनेक पत्र – पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। उनके द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिकाओं में 'अनटचेबल इंडिया', 'बामसेफ बुलेटिन', 'आप्रेस्ड इंडिया' और 'इकोनोमिक अपसर्ज' प्रमुख हैं। वही हिन्दी में उन्होंने 'बहुजन संगठक', 'बहुजन नायक', 'श्रमिक साहित्य', 'दलित आर्थिक उत्थान', 'बहुजन टाइम्स' दैनिक और 'बहुजन एकता' प्रमुख हैं। उनकी चर्चित पुस्तक का नाम 'चमचा युग' है, जिसे उन्होंने 1982 में प्रकाशित किया था।

बुद्ध धर्म में आस्था

मान्यवर कांशीराम यद्यपि जन्म से सिख थे किन्तु वैचारिक रूप से बुद्धिस्ट थे। उन्होंने एक बुद्धिस्ट रिसर्च सेन्टर की स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक बहुजन फाउण्डेशन नामक सामाजिक संगठन की भी स्थापना की थी। उन्होंने अपनी सभाओं में हमेशा कहा कि मैं एक ऐसा भारत बनाना चाहता हूँ जिसमें बुद्ध के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विचारों का समावेश हो। देश बौद्धमय हो। हमारा शासन होने पर देश बौद्धमय हो जायेगा। उन्होंने अपनी इच्छा जाहिर की थी कि उनका अंतिम संस्कार बौद्ध विधान के अनुसार ही किया जाए।

परिश्रम के कारण बीमार

दृढ संकल्प के धनी मान्यवर कांशीराम हमेशा बहुजनों को शासक बनाने के लिए सोचा करते थे। वह एक दिन भी आराम नहीं करते थे। मिशन को पूरा करने के लिए खाने का भी ख्याल नहीं रखते थे। जो भी मिला खा लेते थे। रात भर बैठकर लोगों को मिशन की बातें बताते रहते थे। अतः वह उच्च रक्त चाप और मधुमेह जैसी अनेक बीमारियों के शिकार हो गये। समय बीत रहा था और दलितों को देश का हुक्मरान बनने का उनका सपना आगे बढ़ता जा रहा था। वे राजनीतिक घटना क्रम से भी काफी प्रभावित हो रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में 2003 में वे लकवाग्रस्त हो गये। वे राजनीतिक गतिविधियों से अलग शैया पर दो वर्षों तक पड़े रहे। अंत में 9 अक्टूबर 2009 को हृदयाघात से उनका परिनिर्वाण हो गया। उनकी इच्छा के अनुसार बुद्ध विधान के अनुसार उनका अंतिम संस्कार किया गया।

मान्यवर कांशीराम की महत्वपूर्ण देन

भारत में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर और उनका जय भीम बहुजनों की भुलने की चादर में लिपटता जा रहा था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व लोग भूल गये थे। मान्यवर कांशीराम ने अम्बेडकर और जय भीम की चिंगारी को ऐसी हवा दी जो आज बवंडर बनकर भारत की राजनीति को झकझोर रहा है। मान्यवर कांशीराम ने दलितों और पिछड़ों में शासक बनने की ललक पैदा की। डॉ.अम्बेडकर को उद्धृत करते हुए वे कहते थे कि राजनीतिक चाबी एक मास्टर चाबी है, जिससे हर बंद दरवाजे को खोला जा सकता है। इसका प्रभाव है कि आज हर दलित और पिछड़ा सत्ता प्राप्त करना चाहता है। पहले दलितों–पिछड़ों के नेतृत्व वाला राजनीतिक दल नहीं था। आज अनेक राजनीतिक दल हैं, जिनका शीर्ष नेतृत्व दलितों या पिछड़ों के पास है। कांशीराम की ही देन है कि बहुजन आन्दोलन एक सांस्कृतिक स्वरूप ले लिया है और बुद्ध की विचारधारा का तेजी से विस्तार हो रहा है।

भारत की प्रथम दलित महिला मुख्यमंत्री
सुश्री मायावती

नई दिल्ली का कॉन्स्टीच्यूशन क्लब का हॉल खचाखच भरा हुआ था। भारत के सभी बड़े दलित चिंतक, बुद्धिजीवी और राजनेता दलितों की समस्याओं पर चिंतन कर रहे थे। उस हाल में एक युवती खामोश बैठी हुई थी। एक बड़े राजनेता ने दलितों को हरिजन कहकर संबोधित किया ही था कि वह खामोश युवती गुस्सा से तमतमा गयी। उसने कहा कि दलित यदि हरिजन हैं तो अन्य जाति के लोग किस के जन हैं? यदि हम हरिजन हैं तो क्या महत्मा गाँधी अपने को हरिजन कहलाना पसंद करते? फिर उसने कहा कि मंदिर के अहाते में रहने वाली देवदासियाँ देवता के सामने केवल नाचने का काम ही नहीं करती थीं बल्कि वे पुजारियों और पण्डों की हवस की शिकार भी होती थीं। अतः उन देवदासियों के बच्चों को हरिजन कह कर संबोधित किया जाता था। महात्मा गाँधी ने देवदासियों से पैदा हुई नाजायज संतानों का नाम दलितों को देकर उन्हें गाली दिया है। पूरा हॉल भौचक रह गया। उस समय के उभरते नेता मान्यवर कांशीराम ने जोर से ताली बजायी, मानो उनकी कोई तलाश पूर्ण हो गयी हो। उस युवती का नाम मायावती नैना कुमारी उर्फ चन्द्रावती था जो अब सुश्री मायावती, बहन जी और आयरन लेडी के नाम से विख्यात हैं।

जन्म एवं शिक्षा

सुश्री मायवती का जन्म 15 जनवरी 1956 को नई दिल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रभुदयाल और माता का नाम रामरती देवी था। इनके छः भाई और एक बहन हैं। प्रभुदयाल दूरसंचार विभाग के कर्मचारी थे। इन्हें सरकारी क्वार्टर मिला था जहां रहकर सुश्री मायावती ने शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने 1975 में कालीन्दि कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और 1976 में बी.एम.एल. कॉलेज,मेरठ, गाजियाबाद से बी.एड की। बाद में उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1977 में उन्होंने एक शिक्षक के तौर पर अपना कैरियर शुरू किया और 1984 तक वह बतौर एक

शिक्षक का काम करती रहीं। उनकी प्रबल इच्छा भारतीय प्रशासनिक सेवा की अधिकारी बनने की थी, जिसके लिए उनके पिता जी सदैव प्रोत्साहित करते थे। कॉन्स्टीच्यूशनल क्लब में दिए गए मायावती के भाषण से मान्यवर कांशीराम काफी प्रभावित हुए थे और एक दिन 11 बजे रात को वह प्रभुदयाल जी के क्वॉटर पहुंच गये। उस समय मायावती को छोड़कर सभी लोग सो गये थे। दरवाजे के खटखट की आवाज सुनकर मायावती ने ही दरवाजा खोला। वह आश्चर्य में पड़ गयी। घर के लोग भी नींद से जाग चुके थे। कांशीराम के नाम से प्रभुदयाल परिचित थे। उन्होंने घर आने का कारण पूछा तो कांशीराम ने कहा, मैं मायावती को देश का बड़ा नेता बनाना चाहता हूँ। प्रभुदयाल ने कहा वह कलक्टर बनना चाहती है। मान्यवर कांशीराम ने कहा कि मैं चाहता हूँ कि बड़े –बड़े कलक्टर उसके सामने फाइल लेकर खड़े रहें। कांशीराम का प्रभुदयाल के घर मायावती से मिलने जाना अच्छा नहीं लगा। किन्तु उस समय के उभरते दलित नेता की उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे।

समर्पित राजनीतिक जीवन

मान्यवर कांशीराम से सुश्री मायावती की पहली मुलाकात कॉन्स्टीच्यूशन क्लब नई दिल्ली में हुई थी और वह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से काफी प्रभावित हुई थीं। वह कांशीराम की राजनीतिक गतिविधियों पर कड़ी नजर रखती थीं। कांशीराम भी समय मिलने पर मायावती के घर आते–जाते थे। इसका घर में विरोध भी होता था। कांशीराम का मायावती से मिलने के चलते उसके कलक्टरी की पढ़ाई में बाधा बनने के कारण प्रभुदयाल काफी नाराज थे। उनकी नाराजगी के कारण मायावती ने 1984 में शिक्षक की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और घर छोड़कर बामसेफ के दिल्ली स्थित कार्यालय में रहने लगी। बहुजन समाज पार्टी के गठन में बढ़चढ़कर हिस्सा लेने लगी और बहुजन समाज को तैयार करने के लिए दिल्ली और आस –पास के क्षेत्रों का दौरा करने लगी। उसी वर्ष उन्होंने मुजफरनगर की कैराना लोक सभा की सीट को तैयार करने में अपना ध्यान केन्द्रित किया। 1985 से 1987 तक उन्होंने कड़ी मेहनत की। लोकसभा चुनाव 1989 में बहजुन समाज पार्टी द्वारा उन्हें हरिद्वार और बिजनौर से अपना प्रत्याशी बनाया। मायावती बिजनौर सीट से लोक सभा की सदस्य चुनी गयीं। बहुजन समाज पार्टी ने 3 लोकसभा और 13 विधान सभा की सीट जीतने में सफलता हासिल की।

मान्यवर कांशीराम का कारवां काफी तेजी से आगे बढ़ रहा था। उन्होंने 1993 में समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर गठबंधन बनाया और विधान सभा का चुनाव लड़ा। परिणाम हुआ कि बहुजन समाज पार्टी को 67 सीटें हासिल हुईं। उत्तर प्रदेश में सपा और बसपा की गठबंधन वाली सरकार बनी। मुलायम सिंह यादव मुख्यमंत्री बने। सन् 1993 में मायावती राज्य सभा की सदस्य बनीं। यह वही समय है जब उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी के गठबंधन वाली सरकार बनी थी। 1995 में मायावती ने मुलायम सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और सपा के लोगों द्वारा स्टेट गेस्ट हाउस में मायावती सहित बसपा के विधायकों के साथ मारपीट हुई, जिसे स्टेट गेस्ट हाउस कांड के नाम से जाना जाता है। इस समय भाजपा के ब्रह्मदत्त त्रिपाठी और उनके साथियों ने माायावती को बचाया। भाजपा के सहयोग से 3 जून 1995 में पहलीबार भाजपा और बसपा गठबंधन की सरकार उत्तर प्रदेश में बनी और मायावती ने भारत की पहली महिला दलित मुख्यमंत्री के तौर पर शपथ ली। यह सरकार 18 अक्टूबर 1995 तक चली और भाजपा ने अपना समर्थन वापस लेकर सरकार को गिरा दिया। पुनः 21 मार्च 1997 में मायावती दूसरी बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री भाजपा के ही सहयोग से बनी किन्तु यह सरकार भी 20 सितम्बर 1997 को गिर गयी। भाजपा के सहयोग से मायावती 3 मई 2002 में पुनः एक बार मुख्यमंत्री बनी। इसबार इनका कार्यकाल कुछ ज्यादा नहीं रहा और 26 अगस्त 2003 को सरकार पदच्यूत हो गयी। वर्ष 2007 के चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और वे 13 मई 2007 को चौथी बार अपने दम पर सरकार बनाने में कामयाब रहीं तथा पांच वर्षों तक शासन किया। 2012 में हुए आम चुनाव में वह अपने चिर प्रतिद्वन्दी सपा से चुनाव हार गयीं और 6 मार्च 2012 अपना त्याग पत्र दे दिया।

विवादों से गहरा संबंध

सन् 1991 में चुनाव के दौरान सुश्री मायवती का डी.एम, बुलन्दशहर के साथ मत पत्रों को लेकर छीनाझपटी हुई और इस विवाद में उन्हें कुछ दिनों के लिए सेंट्रल जेल में भी रहना पड़ा था।

राजनीतिक विरोधियों का यह भी कहना है कि सपा और बसपा गठबंधन ने दलित और पिछड़ों के बीच भाईचारा कायम कर उत्तर प्रदेश की सत्ता हासिल की थी। किन्तु मायावती की राजनीतिक महत्वाकांक्षा एवं आर.एस.एस. –

भाजपा के प्रति प्रेम ने दलित और पिछड़ों की राजनीतिक गठजोड़ को समाप्त कर दिया और दोनों को एक दूसरे का विरोधी बना दिया। उनका मानना है कि स्टेट गेस्ट हाउस कांड भाजपा का प्रायोजित कार्यक्रम था।

सुश्री मायवती ने अपने शासन काल में वर्षों से उपेक्षित अपने पूर्वजों को सम्मान दिलाने हेतु राज्य में बड़े – बड़े पार्क और स्मारक के साथ ही उनकी मूर्तियाँ स्थापित कीं। इनमें गौतम बुद्ध, संत रविदास, शाहूजी महाराज, कबीरदास, संत गाडगे, महात्मा ज्योतिबा राव फूले, झलकारी बाई, सावित्रीबाई फूले, डॉ. अम्बेडकर आदि प्रमुख हैं। पहली बार दलित और बहुजन समाज के नेताओं और महापुरूषों की मूर्तियाँ लगायी गयीं। ये मूर्तियाँ लाल, सफेद कीमती पत्थर से बनी हुई हैं। यह बात सवर्णों को पसंद नहीं आने वाली थी। उन्होंने यह प्रचारित किया कि दलित की बेटी पत्थर की प्रेमी है, जितना पैसा उन्होंने पत्थर की मूर्तियों को लगाने में खर्च किया है, उससे हजारों दलितों का उत्थान हो सकता है। इन पार्कों एवं मूर्तियों पर होने वाले खर्च को बढ़ा – चढ़ाकर घोटाला का नाम दिया गया। 2011 में 685 करोड़ की लागत से निर्मित दलित प्रेरणा स्थल और ग्रीन गार्डन के लिए कांग्रेस ने उनपर करदाताओं के पैसे बर्बाद करने का आरोप लगाया था। किन्तु, लखनऊ स्थित अम्बेडकर स्मारक को देखकर कोई भी दलित और बहुजन गर्व कर सकता है। इनका सबसे विवादित कार्य ताज कोरीडोर को बताया जाता है। ताज कारीडोर के निर्माण पर हुए व्यय को ताज कारीडोर घोटाला के नाम से जाना जाता है। वास्तव में ऐसा कोई घोटाला हुआ ही नहीं था। यह कार्य ताजमहल के आस–पास के क्षेत्र के पर्यावरण को सुरक्षित और सुन्दर बनाने मात्र की योजना थी। इस पर कार्य प्रारम्भ भी नहीं हुआ था कि इसे विवादित बना दिया गया।

सुश्री मायावती को धन की प्यासी देवी के नाम से भी प्रचारित किया जाता है। उन पर आरोप लगता है कि चुनाव में टिकट बेचती हैं। अपने जन्म दिन पर पार्टी के कार्यकताओं से धन उगाही करती हैं। इन सबके बावजूद मायावती के प्रति बहुजनों का प्रेम कम नहीं दिखता है और उनके आधार वोट के प्रतिशत में कमी नहीं देखी जाती है।

पुस्तकें

सुश्री मायावती एक शिक्षक, एक वकील एवं एक राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी खुद की लिखी किताबों में 'मेरा संघर्षमयी जीवन' और

'बहुजन मूवमेंट का सफरनामा' तीन भागों में लिखा गया है। उनकी ये दोनों पुस्तकें काफी चर्चित रही हैं। वरिष्ठ पत्रकार अजय बोस ने एक किताब उनके जीवन से संबंधित लिखी है जिसका नाम 'बहनजीः अ पॉलिटिकल बायोग्राफी ऑफ मायावती' काफी प्रशंसनीय है। पत्रकार मोहम्मद जमिल अख्तर ने उन पर एक पुस्तक लिखी है जो बाजार में आयरन लेडी कुमारी मायावती के नाम से उपलब्ध है।

कांशीराम की उत्तराधिकारी

अपने बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण मान्यवर कांशीराम को बहुजन समाज पार्टी के संचालन में परेशानी हो रही थी। उन्हें पक्षाघात हो चुका था। वह चाहते थे कि बहुजन समाज पार्टी को आगे बढ़ाने के लिए उनका कोई योग्य उत्तराधिकारी हो। अतः लखनऊ की एक विशाल जनसभा में उन्होंने वर्ष 2001 में सार्वजनिक मंच से सुश्री मायावती को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, जिसे उपस्थित जनसमूह ने ताली बजाकर अपना समर्थन दिया। वह वर्ष 2003 में बहुजन समाज पार्टी की राष्ट्रीय अध्यक्ष बनीं। दलित समाज की एक बेटी पहली बार एक राष्ट्रीय पार्टी की अध्यक्ष हैं और बहुजन समाज को संगठित कर रही हैं। उनके नेतृत्व में ही उत्तर प्रदेश के विधान सभा का चुनाव लड़ा जा रहा है। अनेक विश्लेषकों का मानना है कि वह पुनः सत्ता प्राप्त कर सकती हैं।

समाज के प्रति समर्पण

मान्यवर कांशीराम अपनी प्रतिज्ञा के कारण आजीवन अविवाहित रहे और उन्होंने समाज को जगाने का कार्य करते हुए अपनी अंतिम सांस ली। उनके जीवन से प्रेरणा लेकर सुश्री मायावती भी आजीवन अविवाहित रहते हुए बहुजन समाज को तैयार कर रही हैं। किसी पुरुष का कुँवारा रहने और किसी महिला के कुँवारी रहने में काफी फर्क है। महिला कुँवारी रहती है तो समाज उसे बदचलन और कुलटा जैसे शब्दों से प्रहार कर घायल करता है। अतः सुश्री मायावती के कुँवारी रहकर समाज को अनवरत जाग्रत करना अपने आप में एक बड़ी और महान बात है।

राज्य सभा की सदस्य

सुश्री बहन कुमारी मायावती 1994 में उत्तर प्रदेश से राज्य सभा की सदस्य रहीं और उसके बाद भी वह लोक सभा, विधान सभा या राज्य सभा की सदस्य बनती रही हैं किन्तु जब वह सहारनपुर में दलितों के साथ हुए अत्याचार का मुद्दा

सदन में रख रही थीं तब भाजपा के सदस्यों ने उन्हें बोलने नहीं दिया। इस पर उन्होंने कहा कि एक सांसद को दलितों के ऊपर होने वाले अत्याचार को संसद में नहीं रखने दिया जा रहा तो ऐसे सदन में रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। अब संसद तभी आऊँगी जब हमारी पार्टी के सांसदों की संख्या अधिक होगी और मुझे इसमें बोलने से कोई रोक नहीं सकेगा। उसी समय उन्होंने संसद से अपना त्याग पत्र दे दिया और पुनः संसद नहीं गयीं। दलितों के लिए ऐसा त्याग करने वाली वह बाबा साहेब के बाद दूसरी सांसद हैं।

मुख्यमंत्री के रूप में महत्वपूर्ण कार्य

सुश्री मायावती केवल कथनी में विश्वास नहीं रखती हैं। उन्हें जब भी मौका मिला उन्होंने कार्य कर के दिखाया। उन्होंने उत्तर प्रदेश में हजारों अम्बेडकर ग्राम बनाया और उनमें आधुनिक सुविधायें यथा– सड़क, बिजली, पानी, विद्यालय आदि उपलब्ध करायीं। उन्होंने मान्यवर कांशीराम आवास योजना के तहत गरीबों के लिए सस्ता आवास बनवाये जिनमें जरूरत की सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। उनके द्वारा विश्व स्तरीय सड़क, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, इंजिनियरिंग और मेडिकल कॉलेज, विश्वविद्यालय आदि का निर्माण कराया गया है। अपने शासन काल में उन्होंने गाँवों के लिए सफाई कर्मी का पद सृजित किया और लाखों बेरोजगारों को नौकरी दी। उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य दलितों को जमीन का पट्टा और जमीन पर कब्जा दिलाना है। आज उत्तराखंड के दलित इस कार्य के लिए मायावती को याद करते हैं और अपना मसीहा मानते हैं। उनके द्वारा बनवाई गयी सड़क पर पहली बार भारत में फार्मूला वन रेस का आयोजन किया गया। गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय को देखकर लोगों को सहसा विश्वास ही नहीं होता है कि यह भारत का ही कोई विश्वविद्यालय है।

अंत में कहा जा सकता है कि सुश्री मायावती एक दृढ़ प्रतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और बहुजन समाज को बेहतर बनाने के लिए समर्पित राजनेता हैं। वे भारत के करोड़ों दलितों पिछड़ों के लिए एक उम्मीद हैं। उनकी आलोचना चाहे जितनी भी की जाए किन्तु उनके प्रभाव के कारण ही अनेक दलित नेताओं को दूसरे दलों में भी मान–सम्मान मिलता है।

समर्पित राष्ट्रवादी बाबू जगजीवन राम

''भारत में अंग्रेजों की सरकार थी और देश में छुआछूत का बोलबाला था। अछूतों में सबसे नीचले पायदान और गाँव के दक्षिण टोला में बसने वाली चमार जाति को समाज में सबसे नीची निगाह से देखा जाता था। दलित समाज की अन्य जातियाँ भी चमारों को हेय दृष्टि से देखती थीं। उन्हीं दिनों आरा के चंदवा गाँव में श्री शोभा राम के परिवार में एक बच्चे का जन्म हुआ, जिसे प्यार से आज भी 'बाबूजी' के नाम से जाना जाता है और आदर के साथ नाम लिया जाता है। उसने अपनी प्रतिभा के बल पर भारत की राजनीति में पाँच दशक तक सांसद और लगभग सभी महत्वपूर्ण मंत्रालयों का निर्विवाद मंत्री और एक बार भारत का उपप्रधान मंत्री रहा। रक्षामंत्री रहते उसने पाकिस्तान का युद्ध जीता और विश्व में सबसे ज्यादा सैनिकों को आत्मसमर्पण कराने का गौरव हासिल किया। अकाल से मरते हुए लोगों को भोजन उपलब्ध कराने के लिए भारत में हरित क्रांति का आगाज किया और देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया। उस बालक का नाम जगजीवन राम है।''

जन्म एवं शिक्षा

बाबू जगजीवन राम का जन्म आरा के पास स्थित चंदवा गाँव में 5 अप्रैल 1908 को हुआ था। इनके पिताजी का नाम शोभा राम था। वह अंग्रेजों की सेना में नौकरी करते थे। उनके पिताजी रविदास जी से काफी प्रभावित थे और उनकी एक दोहा की पंक्ति से ही अपने प्यारे पुत्र का नामकरण किया था। रविदासजी का दोहा– प्रभु जी संगति शरण तिहारी, जगजीवन राम मूरारी, की प्रेरणा से ही जगजीवन नामकरण किया गया था।

बाबू जगजीवन राम का 1920 में आरा स्थित अग्रवाल विद्यालय में उच्च शिक्षा के लिए नामांकन कराया गया। वह आयु के बढ़ने के साथ ही परिपक्व हो रहे थे। विदेशी भाषाओं के साथ ही वह अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने हिन्दी के साथ ही संस्कृत सीख लिया था। अपनी जिज्ञासा के कारण वह बहुत ही कम समय में अंग्रेजी भाषा में निपुण हो गये। आनन्द मठ जिसे

बंकिमचन्द्र चटर्जी ने बंगला में लिखा था, उसे पढ़ने के लिए बाबू जगजीवन राम ने बंगला सीख लिया। जब 1925 में पंडित मदन मोहन मालवीय आरा आये तो उनकी मुलाकात जगजीवन राम से हुई। वह इनकी प्रतीभा से काफी प्रभावित हुए और देश की आजादी तथा राष्ट्र के निर्माण में जगजीवन राम की भूमिका देखने से अपने को नहीं रोक पाये। उन्होंने जगजीवन राम को बनारस बुलाया। बनारस हिन्दू विश्वद्यालय का जातिवादी माहौल जगजीवन राम को रास नहीं आया और उन्होंने उसका खुलकर विरोध किया। उन्होंने बीएचयू से इन्टरमीडियेट विज्ञान की परीक्षा पास की तथा आगे विज्ञान की पढ़ाई के लिए कलकता चले गये। उन्होंने कलकता विश्वद्यालय से विज्ञान में स्नातक की डिग्री हासिल की।

सामाजिक–राजनीतिक कार्य एवं अंग्रेजों का विरोध

कलकता विश्वविद्यालय में नामांकन के छः महीने भी नहीं हुए थे कि जगजीवन राम ने वहां के मिलों में काम करने वाले मजदूरों का संगठन बनाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने 1928 में वेलगटन स्क्वायर में एक विशाल मजदूर रैली का आयोजन किया जिसमें लगभग पचास हजार लोगों ने भाग लिया। इस रैली ने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का ध्यान बाबू जगजीवन राम की ओर खींचा और उनकी कार्य क्षमता और संगठन करने की क्षमता से वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने स्वतंत्र विचार रखने वाले चन्द्रशेखर आजाद और लेखक मन्मथनाथ गुप्ता के साथ भी काम किया। बिहार में 1934 में भीषण भूकम्प आया, जिससे काफी जान–माल की तबाही हुई। बाबू जगजीवन राम भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए बिहार आ गये। उन्होंने पीड़ितों की काफी सेवा की। यहीं पर उनकी मुलाकात उस समय के महान स्वतंत्रता सेनानी महात्मा गांधी से हुई। जगजीवन राम का मानना था कि भारत में महात्मा गांधी ही वास्तव में देश की स्वतंत्रता और दलित –पिछड़ों के विकास के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारत में अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को सफल बनाने हेतु दलितों का धर्मान्तरण कराने का कार्य किया। बाबू जगजीवन राम ने इस अन्यायपूर्ण कार्य का विरोध किया। अपने छात्र जीवन में ही 1934 में कलकता में उन्होंने अखिल भारतीय रविदास महासभा का गठन किया और उसके माध्यम से विभिन्न जिलों में संत रविदास जी की जयंती मनाने का कार्य किया। इस कार्य से वह महात्मा गांधी के प्रिय पात्र बन गये। उन्होंने खेतिहर मजदूर सभा और भारतीय दलित

वर्ग संघ का गठन किया।

इसी दौरान उनकी मुलाकात कानपुर के डॉ. बीरबल से हुई जो एक प्रख्यात चिकित्सक थे। उनकी पुत्री इन्द्राणी बाबू जगजीवन के विचारों से काफी प्रभावित हुई। सन् 1935 में जगजीवन राम और इंद्राणी का विवाह हो गया। कुछ समय पश्चात् इस जोड़ी ने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया जो सुरेश कुमार और मीरा कुमार के नाम से जाने जाते हैं। भारत में मतदान के लिए एक कमिटि कार्य कर रही थी जिसे हैमंड कमिटि के नाम से जाना जाता है। बाबू जगजीवन राम ने 1935 में दलितों के मतदान के लिए हैमंड कमिटि के समक्ष प्रस्ताव रखा, जिसे स्वीकार कर लिया गया।

बाबू जगजीवन राम की ख्याति धीरे – धीरे बढ़ रही थी। वह लगभग 28 वर्ष के हो चुके थे। 1937 में विधानमंडल का चुनाव हुआ। उन्होंने भारतीय दलित वर्ग संघ के माध्यम से अपनी उम्मीद्वारी दी और मैदान में उतर गए। इस दल से 14 सदस्य निर्वाचित हुए, जिनमें से बाबू जगजीवन राम एक थे। इससे बाबूजी की राजनैतिक शक्ति और लोकप्रियता दोनों काफी बढ़ गयी। अंग्रेजों ने बाबूजी से समर्थन मांगा जिसका उन्होंने विरोध कर दिया। इसके लिए गांधी जी ने जगजीवन राम की प्रशंसा की और इन्हें खरा सोना कहकर सम्मानित किया। जब कांग्रेस की सरकार बनी तो बाबूजी को कृषि मंत्रालय, सहकारी उद्योग व ग्रामीण विकास मंत्रालय में संसदीय सचिव नियुक्त किया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय सैनिकों के इस्तेमाल और अंडमान के भारतीय कैदियों के मुद्दे पर महात्मा गांधी ने अंग्रेजों का विरोध किया और सभी कांग्रेसी अंतरिम सरकारों ने 1938 में इस्तिफा दे दिया। गांधी जी ने 9 अगस्त 1942 को 'भारत छोड़ों आन्दोलन' प्रारम्भ किया। बाबू जगजीवन राम को बिहार और पूर्वी भारत में आन्दोलन की जिम्मेवारी दी गयी और उन्होंने सराहनीय कार्य किया। किन्तु 10 दिन के अन्दर ही बाबू जी को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। फिर वह 1943 में जेल से रिहा हुए। सन् 1946 में लार्ड वेवल ने अंतरिम सरकार के गठन के लिए कांग्रेस को आमंत्रित किया और बाबू जगजीवन राम उन 12 नेताओं में शामिल थे, जिन्हें सरकार के गठन के लिए कहा गया। वह सन् 1946 में जेनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में हिस्सा लेने गये जहां से लौटते समय उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया था किन्तु वह बाल – बाल बच गये।

राजनीतिक सफलताएँ

बाबू जगजीवन राम भारतीय राजनीति के विरल नेता हैं, जो जीवन पर्यन्त सांसद और मंत्री रहे। वह सन् 1946 में पंडित जवाहर लाल नेहरू की अंतरिम सरकार में सम्मिलित हुए और उसके बाद तीस वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस मंत्रीमंडल में श्रम, रक्षा, रेल, कृषि, दूरसंचार सहित विभिन्न विभागों का दायित्व निभाया। वह सामाजिक कार्यकर्ता, सांसद और कैबिनेट मंत्री के तौर पर पांच दशक तक देश की सेवा किए। वह सासाराम से 1952 से 1984 तक लगातार सांसद रहे। उन्हें जिस भी विभाग का दायित्व दिया गया, उसमें अपनी प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। उनकी कुशलता ही थी कि उन्होंने सभी मंत्रालयों में अपना कार्यकाल पूर्ण किया। उन्होंने विद्यार्थी जीवन में कलकता के मजदूरों की अवस्था को नजदीक से देखा था और इसलिए श्रम मंत्री होने के बाद उन्होंने मजदूरों की दशा में सुधार के अनेक उपाय किए। उन्होंने मजदूरों की सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा के लिए जो कार्य और कानूनी प्रावधान किए, उसका लाभ आज तक श्रमिकों को मिलता है। उनके मंत्री रहते ही न्यूनतम मजदूरी भुगतान अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम, श्रम संघ अधिनियम में संशोधन, इ.एस.आई अधिनियम, प्रोविडेंट फंड अधिनियम, आदि कानून पारित हुए, जिनका लाभ मजदूरों को आज तक मिलता है।

सन् 1952 में बाबूजी को संचार मंत्री बनाया गया था। उस समय विमानन् विभाग भी संचार मंत्रालय के अधीन ही था। उन्होंने संचार मंत्री रहते हुए विमानन् कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण किया और गांवों में डाकखानों का नेटवर्क बिछा दिया। जब रेल मंत्री बने तो उन्होंने रेलवे के आधुनिकीकरण की बुनियाद रखी। उनके द्वारा रेलवे कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ प्रारम्भ की गयीं। उनके रक्षा मंत्री रहते हुए पाकिस्तान से हुए युद्ध में भारत की विजय हुई और एक लाख से ज्यादा सैनिकों ने आत्म समर्पण किया जो एक रिकार्ड है।

हरित क्रांति

सन् 1962 में चीन और 1965 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध के कारण देश को गरीबी और भुखमरी के दौर से गुजरना पड़ा। उस समय अमेरिका से सहायता के तौर पर गेहूं और ज्वार का आयात हो रहा था। बाबू जगजीवन राम कृषि मंत्री थे। डॉ. नॉरमन बोरलाग को भारत आकर हरित क्रांति का सूत्रपात

करने हेतु निमंत्रित किया गया। भारत में हरित क्रांति का सूत्रपात हुआ। किसानों को उन्नत बीज, खाद, औजार, सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करायी गयीं और भारत अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया। अमेरिका से आयात होने वाले अन्न को रोक दिया गया। यह सब बाबूजी के कुशल नेतृत्व के कारण ही संभव हो पाया।

आधारभूत संरचना

बाबू जगजीवन राम ने रेल मंत्री रहते हुए महसूस किया कि रेलवे की आधारभूत संरचना पर्याप्त नहीं है। अतः उन्होंने इसके विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने बनारस में रेल डिजल इंजन कारखाना, पैराम्बदूर में सवारी डिब्बा कारखाना और बिहार के जमालपुर में माल डिब्बा कारखाने की स्थापना की। संचार मंत्री रहते हुए उन्होंने वायु सेवा निगम और इंडियन एअर लाइंस और एअर इंडिया की स्थापना की। सरदार पटेल ने इस राष्ट्रीयकरण का विरोध किया और इसे स्थगित करने का सुझाव दिया तो बाबूजी ने कहा कि आजादी के बाद देश के पुननिर्माण के सिवा और काम ही क्या बचा है?

छुआछूत विरोधी सम्मेलन

बिहार की राजधानी पटना में बाबू जगजीवन राम ने एक छुआछूत विरोधी सम्मेलन में भाग लिया। उन्होंने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें सवर्णों से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा है। हमें उनके उपदेश की आवश्यकता नहीं है। उनका यह कहना कि हमें मांस नहीं खाना चाहिए। हमें मदिरा नहीं पीना चाहिए। हमें साफ–सुथरा रहना चाहिए। इससे काम नहीं चलने वाला है। इसके लिए ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। मोहम्मद अली जिन्ना मुसलमानों को अपना अलग देश बनाने की सलाह दे रहे हैं और इसके लिए सरकार से मांग कर रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की मांग कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि राष्ट्र का निर्माण व्यक्तियों से होता है, हमसे होता है। राष्ट्र से हमारा निर्माण नहीं होता है। यह देश हमारा है। इसके निवासियों को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य हमारा है। महात्मा गांधी ने छुआछूत को मिटाने का संकल्प लिया है। इसके लिए यदि कुर्बानी देने की जरूरत पड़ी तो मैं पीछे नहीं हटूँगा। देश की आजादी की लड़ाई में सभी घर्म और जाति के लोगों को बड़ी संख्या में जोड़ना होगा और देश को टूटने से रोकना पड़ेगा।

कांग्रेस की तानाशाही का विरोध

सभी जानते हैं कि बाबू जगजीवन राम नेहरू मंत्रीमंडल के सबसे युवा नेता थे। आवश्यकता हुई तो कांग्रेस की सरकार की मजबूती के लिए वह किसी से भी भिड़ने को तैयार हो जाते थे। किन्तु श्रीमती इंदिरा गांधी के लोकशाही के विरोध ने बाबू जगजीवन राम का कांग्रेस से मोहभंग कर दिया और वह लोकशाही की स्थापना के लिए कांग्रेस से अलग हो गए। सभी को पता है कि 1969 में कांगेस के विभाजन में उन्होंने इंदिरा गांधी का साथ दिया था और कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष भी बने थे। किन्तु 1977 में वे कांग्रेस छोड़कर जनता दल में शामिल हो गये। 6 फरवरी 1977 के दिन केन्द्रीय मंत्रीमंडल से दिए गए उनके इस्तीफे के कारण इंदिरा गाँधी असहाय हो गयीं। उन्होंने कांगेस से अलग होकर अपना एक संगठन भी बनाया, जिसे 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' के नाम से जाना जाता है। इसके बाद उन्होंने 1980 में कांग्रेस **'जे'** का गठन किया।

दलितों को संगठित करने हेतु डॉ. अम्बेडकर को पत्र

आम तौर पर बाबू जगजीन राम को बाबा साहेब का विरोधी बताया जाता है। बहुजन समाज पार्टी के द्वारा कहा जाता है कि यदि बाबू जगजीवन राम ने बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का साथ दिया होता तो दलितों की स्थिति कुछ और ही होती। उनका मानना है कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर पिछड़ा वर्ग संघ की सभा में पटना आये थे, तो जगजीवन राम ने उनके ऊपर पत्थर चलवाया था। इस कारण बहुत से दलित जगजीवन राम को नफरत की नजर से देखते हैं। किन्तु सी.आई.डी. विशेष शाखा, पटना, बिहार के एक गोपनीय पत्र का उल्लेख बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर एवं अछूतों का आन्दोलनः 1915 –1956 साहित्य सदन, अलीगढ़ से प्रकाशित किया गया है। पत्र को देखने के बाद यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि तत्कालीन दोनों नेताओं में दलितों के प्रति गहन समझ थी तथा दोनों दलितों की राजनीतिक सफलता के लिए साथ थे। बाबू जगजीवन राम के पत्र की महत्वपूर्ण पंक्ति है, ' हम दलित वर्गों ने यहाँ अपना आन्दोलन बहुत देर से शुरू किया था, इसलिए हमारा संगठन भी अभी छोटा है। किन्तु जो अनुभव हमने हाल के चुनावों में प्राप्त किया है, उसने साबित कर दिया है कि यदि हमने अगले पांच वर्षों तक अपना कार्य जारी रखा, तो अगला चुनाव बहुत अच्छी तरह और सफलता के साथ लड़ सकते हैं।'बाबू जगजीवन राम ने अपना पत्र 8 मार्च 1937 को डॉ. अम्बेडकर को लिखा था और

इसकी रिपोर्टिंग 10 मार्च 1937 को सी.आई.डी. पटना, बिहार, की विशेष शाखा के एक अधिकारी द्वारा की गयी थी।(गोपनीय रूप से पता चला है कि बिहार प्रांतीय दलित वर्ग संघ, पटना के अध्यक्ष जगजीवन राम, बी.एस.सी. ने 9 मार्च 1937 को डॉ. अम्बेडकर, बार–एट. लॉ, राजगृह, दादर, बम्बई, को एक पत्र लिखा है, जो इस प्रकार है।)

मेरे प्रिय डॉक्टर साहेब,

मुझे आपका इसी 3 तारीख को पत्र मिला। अगर जाति पर आपका विवरण (ब्रोशर) पूरा हो गया हो, तो कृपया उसकी एक प्रति भेजने की कृपा करें, ताकि मैं उसका अनुवाद कर सकूँ।

मैं आपकी इच्छानुसार उन प्रत्याशियों की सूची (पत्र के नीचे सारणी में उल्लिखित) भेज रहा हूँ, जो चुनाव लड़े थे। मैं मानता हूँ कि हमने कांग्रेस के साथ एक समझौता किया है, और इस समझौते के परिणामस्वरूप संघ के 9 लोग कामयाब भी हुए हैं। उन्होंने संघ के संकल्प पर कुछ आरक्षण के साथ कांग्रेस के संकल्प पर भी हस्ताक्षर किए हैं। शायद आप जानते हैं कि यहां बिहार में कांग्रेस के सिवा कोई अन्य संगठित पार्टी नहीं है। स्थानीय स्वशासन मंत्री श्री गणेशदत्त सिंह अपनी पार्टी बनाने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु वह उसका संगठन खड़ा नहीं कर सके। हमने आखिरी वक्त में 29 अक्टूबर 1936 को कांग्रेस से समझौता किया और 3 नवम्बर 1936 को नामांकन पत्र दाखिल किया। हम दलित वर्गों ने यहां अपना आन्दोलन बहुत देर से शुरू किया था, इसलिए हमारा संगठन भी अभी छोटा है। किन्तु जो अनुभव हमने हाल के चुनाव में प्राप्त किया है, उसने साबित कर दिया है कि यदि हमने अगले 5 वर्षों तक अपना कार्य जारी रखा, तो हम अगला चुनाव बहुत अच्छी तरह और सफलता के साथ लड़ सकते हैं। आप इलाहाबाद के श्री बलदेव प्रसाद जायसवाल को जानते हैं। वह पटना आए हुए हैं और अखिल भारतीय सम्मेलन करना चाहते हैं। यहां उनके द्वारा अखबारों में वक्तव्य दिया गया कि सम्मेलन की अध्यक्षता दीवान बहादुर श्री निवासन करेंगे और आप भी सम्मेलन में भाग लेंगे। मैं सच्चाई नहीं जानता और न मैं इस पर विश्वास कर सकता हूँ। पिछले वर्ष लखनऊ में एक सम्मेलन हुआ था और श्री जायसवाल उस सम्मेलन के संचालन में गतिशील व्यक्ति थे। मैं सिर्फ आपसे मिलने के लिए पूरे दिन लखनऊ में रहा था, परन्तु आपको न देखकर निराशा हुई थी। अब वह मेरी मदद ले रहे हैं, पर मैं तब तक खुलकर उनकी

मदद नहीं कर सकता और न किसी तरह की कोई मदद उनको दे सकता हूँ, जब तक कि मुझे यह न पता चल जाए कि आप इस सम्मेलन में सम्मिलित होंगे। यह सम्मेलन 9,10 और 11 अप्रैल 1937 को होने वाला है। बिहार का कोई भी व्यक्ति उनके साथ नहीं है। उन्होंने यहाँ कैथोलिक चर्च में अपना कार्यालय बनाया है, और सारा प्रबंध मिशनरियों के द्वारा किया जा रहा है।

दलित वर्ग संघ की कार्यकारिणी समिति ने पटना में 15 अप्रैल और 15 मई 1937 के बीच किसी तारीख को प्रांतीय सम्मेलन करने का निश्चय किया है और उसमें आपको आमंत्रित करने का भी निर्णय लिया है। किन्तु यदि आप श्री जायसवाल के सम्मेलन में भाग लेने के लिए आ रहे हैं, जिसका मुझे संदेह है, तो हम अपने सम्मेलन की उसी के आसपास 12 अप्रैल की तारीख तय कर लेंगे। क्या आप इस पत्र के मिलते यथाशीघ्र सूचित करने की कृपा करेंगे कि आप श्री जायसवाल के सम्मेलन में आयेंगे कि नहीं? एक बात और, वह सौ से ज्यादा दलित वर्गों की भीड़ जुटाने में समर्थ नहीं होंगे। हालांकि उन्होंने हजारों की संख्या में मुसलमानों एवं ईसाईयों को भी आमंत्रित किया है, जैसा कि उन्होंने लखनऊ में किया था। मैं इस तरह की रीति का घोर विरोध करता हूँ। हमें वास्तविक दलित वर्गों का ही सम्मेलन करना चाहिए। शीघ्र ही उत्तर की प्रत्याशा में। सादर।

भवदीय

(हस्ताक्षर)

जगजीवन राम

(बिहार प्रांतीय विधान सभा के लिए चुनाव लड़ने वाले सदस्यों की सूची जो यहाँ नहीं दी गई है।)

1977 का चुनाव और जगजीवन राम की भूमिका

18 जनवरी 1977 को श्रीमती इंदिरा गांधी ने अचानक चुनाव की घोषणा कर दी। बाबू जगजीवन राम ने कांग्रेस से त्याग पत्र दे दिया और एक राजनीतिक दल का गठन किया। इस दल का नाम उन्होंने 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' रखा। वास्तव में बाबू जगजीवन राम द्वारा पार्टी के गठन के बाद जनता पार्टी के साथ सीमित चुनावी समझौता हुआ था किन्तु उसका प्रभाव बहुत ज्यादा था और दलित समुदाय के साथ ही प्रबुद्ध लोग बाबू जगजीवन राम को भावी प्रधानमंत्री के तौर पर देख रहे थे। जनता पार्टी की जीत के बाद प्रधानमंत्री की दौड़ में आगे चल रहे बाबू जगजीवन राम के पुत्र

श्री सुरेश कुमार के निजी जीवन से संबंधित कुछ तस्वीरों को प्रचारित कर उन्हें प्रधानमंत्री की दौड़ से बाहर कर दिया गया और मोरारजी देसाई के प्रधान मंत्री बनने का रास्ता साफ हो गया। अनेक लोगों ने संसद में आपातकाल का समर्थन करने के कारण जगजीवन राम को प्रधान मंत्री के तौर पर पसंद नहीं किया। जबकि मोरारजी देसाई आपात काल में जेल में डाल दिए गए थे। बाबू जगजीवन राम इस मंत्रीमंडल में सम्मिलित नहीं होना चाह रहे थे किन्तु जय प्रकाश नारायण के आग्रह पर वे मोरारजी देसाई मंत्रीमंडल में सम्मिलित हुए।

कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष

सन्1885 में गठित कांग्रेस को बाबूजी ने अपनी माँ कह कर सम्बोधित किया है। वह गांधी जी के प्रिय थे और पं॰ जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती इंदिरा गांधी के अच्छे सलाहकार थे। वे सन्1937 से 1977 तक कांग्रेस पार्टी के सदस्य रहे। सन् 1966 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के निधन के बाद कांग्रेस में आंतरिक कलह के कारण कांग्रेस दो भाग में बंट गयी। एक तरफ नीलम संजीव रेड्डी, मोरारजी देसाई और कुमारसामी कामराज ने अपनी अलग पार्टी बना ली वहीं श्रीमती इंदिरा गांधी, बाबू जगजीवन राम और फकरूद्दीन अली अहमद कांग्रेस के साथ खड़े रहे। फलस्वरूप 1969 में बाबूजी को कांग्रेस का निर्विरोध अध्यक्ष चुन लिया गया। उनके नेतृत्व में 1971 का चुनाव लड़ा गया जिसमें कांग्रेस को प्रचंड बहुमत मिला। इस जीत का श्रेय श्रीमती इंदिरा गांधी ने बाबू जगजीवन को दिया। सन्1980 में उन्होंने कांग्रेस जे0 का गठन किया। 1984 में हुए चुनाव में वे सासाराम संसदीय चुनाव क्षेत्र से प्रचंड बहुमत से चुनाव जीते।

अंतिम यात्रा

सन् 1986 के 6 जुलाई को बाबू जगजीवन राम ने अंतिम सांस ली। उन्होंने आधी शताब्दी तक सासाराम संसदीय क्षेत्र से लोक सभा में प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने दलित और कांग्रेस की राजनीति में अपनी एक अलग पहचान बनायी और निर्भिकता से कार्य किया। बिहार के दलित उनके साथ कंधा से कंधा मिलाकर खड़े रहे। वे एक सर्वमान्य और सभी को स्वीकार्य नेता थे। उनसे जो एकबार मिला, उनका प्रशंसक हुए बिना नहीं रहा। वह जिस विभाग के भी मंत्री रहे, निडर होकर दलितों को उनकी हिस्सेदारी देने में अपनी भूमिका अदा की।

महान संत एवं समाज सुधारक श्री नारायण गुरू

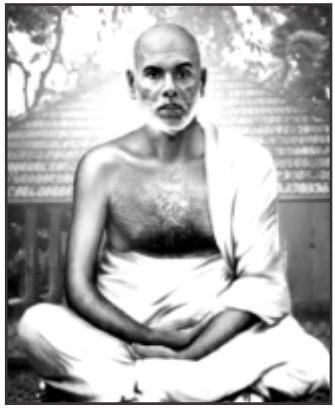

अरूविप्पुरम का घना जंगल और उस घने जंगल के एकांत में निर्भीक एक अधनंगा व्यक्ति अपने में लीन, किसी जंगली जानवर का भय नहीं, खाने की चिंता नहीं, किसी के आने और जाने की परवाह नहीं। एक गड़ेरिया अपने जानवरों को चराने जंगल में गया। उसने इस तेजस्वी पुरुष को जंगल के बीहड़ में देखा। उसे आश्चर्य हुआ। वह गांव में गया और अन्य लोगों को बताया। धीरे –धीरे वह गड़ेरिया उस संत के नजदिक आया और उनका पहला शिष्य बना। उसका नाम परमेश्वरन् पिल्लै था। धीरे – धीरे लोग उन्हें सिद्ध पुरूष मानकर आशीर्वाद के लिए आने लगे। उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वे आगे चलकर श्री नारायण गुरू के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे एक मंदिर बनाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दक्षिण केरल के नैयर नदी के अरूविप्पुरम् का चयन किया और वहां मंदिर बनवाया। उस समय का यह अकेला मंदिर है, जिसमें कोई देवता नहीं है और इसमें बिना किसी भेदभाव के हर जाति और हर सम्प्रदाय के लोग जा सकते हैं। इसमें पुरुष के साथ महिलाएँ भी पूजा कर सकती हैं। आज यह केरल का सर्वाधिक पवित्र तीर्थस्थल बन चुका है। ब्राह्मणों ने इसमें जाने को महापाप की संज्ञा दी थी। तब श्री नारायण गुरू ने कहा कि ईश्वर न तो पुजारी हैं और न ही किसान। श्री नारायण गुरू का आदर्श बहुत ही महान था। उन्होंने कहा, '' यह है एक आदर्श निवास, रहते हैं जहां मनुष्य बंधुवत्, मुक्त हो धार्मिक द्वेषभाव और जातिगत संकीर्णताओं से।'' इसका अर्थ है कि श्री नारायण गुरू एक ऐसा आदर्श चाहते थे जहाँ मनुष्य बिना किसी जाति और धर्म के भेदभाव के मित्रवत निवास करें। उनके इस आदर्श को केरल ने बहुत हद तक प्राप्त किया है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है।

नारायण गुरू के जन्म के समय केरल की सामाजिक स्थिति

केरल का समाज आकंठ जातिवाद, भेदभाव, गैर – बराबरी और छुआछूत में डूबा हुआ था। समाज मुख्यतः दो वर्गों यथा– ब्राह्मण और गैर – ब्राह्मण में बंटा हुआ था। यह दीवार अभेद्य और अलंघ्य थी। गैर – ब्राह्मण सछूत और अछूत और पवित्र – अपवित्र में बंटा हुआ था। इनसे ही सभी का कार्य निर्धारित होता था। इसका उल्लंघन करने पर दंड का विधान था। लगभग 1803 –04 में ईजवा जाति के कुछ लोगों ने वायकम मंदिर में प्रवेश का प्रयास

किया किन्तु उनका वध करके तालाब में दफना दिया गया। इस तालाब को आज दलवा कुलम के नाम से जाना जाता है।

केरल के नम्बूदरी ब्राह्मणों ने गैर– ब्राह्मणों से दूर रहने का एक विधान बना रखा था जिसके अनुसार इजवा को 20 से 36 फीट, चेरूमन और पुलाया लोगों को 64 फीट, नायडी लोगों को 72 फीट की दूरी पर रहना पड़ता था। इससे कम दूरी होने पर नम्बूदरी अपवित्र हो जाते थे। कुछ जातियों को देखने मात्र से ही वे अपवित्र हो जाया करते थे। इन्हें छाता, जूता और सोने के आभूषण आदि के प्रयोग से वंचित रखा गया था। गैर ब्राह्मण एक मंजिल से ज्यादा का घर नहीं बना सकते थे। वे गाय का दूध नहीं पी सकते थे। महिलाओं को स्तन ढकना मना था। वे ऊँची जाति की महिलाओं के समान अपने सिर पर पानी का घड़ा नहीं रख सकती थीं। मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकती थी। सरकारी नौकरी करना मना था। गैर–ब्राह्मणों की विवाहित महिलाओं को शील भंग करने के लिए विवाह की पहली रात नम्बूदरी ब्राह्मणों के घर भेजना अनिवार्य था। वे उन्हें कई रात रख सकते थे। इसका विरोध नहीं किया जा सकता था। विरोध करने पर वध किए जाने का प्रावधान था। ऐसे ही सामाजिक परिवेश में श्री नारायण गुरू का जन्म हुआ था और वे इसे जड़ से समाप्त करना चाहते थे।

जन्म एवं शिक्षा

श्री नारायण गुरू का जन्म दक्षिण केरल के तिरूअनंतपुरम् के उत्तर में 12 किलोमीटर की दूरी पर एक छोटे से गाँव चेम्पपंति के ईजवा जाति में 3 सितम्बर 1854 को हुआ था। ईजवा जाति को पिछड़ी जाति में रखा गया है किन्तु ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में इन्हें भी अछूत माना जाता है। इनके घर का नाम नानू था। इनका घर भद्र देवी के मंदिर के पास होने के कारण घर का वातावरण भक्तिमय था। इनके पिता मदन असन थे और वे प्रसिद्ध आचार्य और संस्कृत के विद्वान थे। वे आयुर्वेद और ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे। इनकी माँ एक सरल घरेलू महिला थीं। आम बच्चों की तरह नानू का भी 5 वर्ष की आयु में गांव के स्कूल में प्राथमिक शिक्षा के लिए नामांकन कराया गया। गाँव में पिता की छत्रछाया में ही नानू ने एक आचार्य जो दूर से ही इन्हें पढ़ाया करते थे, से संस्कृत, आयुर्वेद और ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त की। उस समय समाज की निम्न जातियों को शिक्षा पाने का अधिकार नहीं था किन्तु समाज के मिथ को तोड़ते हुए नानू ने शास्त्रों का अध्ययन किया और उसमें विद्वता हासिल की। वे पढ़ाई के साथ ही खेती में भी हाथ बँटाया करते थे। वे मंदिर में पूजा और एकांत में ध्यान भी लगाया करते थे। 14 वर्ष की आयु में उन्हें नानू भक्त कहकर बुलाया जाने लगा। 15 वर्ष की आयु में उनकी माता का देहान्त हो गया। वे अपने मामा

आयुर्वेदाचार्य कृष्ण वेदयार की देखभाल में रहने लगे। उन्होंने नानू को करूनागपल्ली में एक योग्य अध्यापक रमण पिल्लै रमन के पास भेजा। इस सवर्ण हिन्दू ने उन्हें घर से बाहर रखकर पढ़ाया। कुछ ही समय में नानू अपने सहपाठियों से आगे निकल गया। अपने परिश्रम के कारण वह बीमार पड़ा और उसे घर वापस आना पड़ा।

विवाह और संघर्ष के पथ पर

रोग से ठीक होने के बाद उन्होंने अपने गाँव के आस – पास ही विद्यालय खोलकर पिछड़े वर्ग के बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। एक तरफ उन्हें परिवार के भरण – पोषण की चिंता थी और दूसरी ओर आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करना चाह रहे थे। यह बात उनके संबंधियों को समझते देर नहीं लगी और उन्होंने नानू को आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने से रोकने हेतु विवाह करने को मजबूर कर दिया। 28 वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया।

उनका मन सांसारिक जीवन में नहीं लगा और घर छोड़कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध को पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई थी किन्तु श्री नारायण गुरू को कन्याकुमारी के मारूतवन पहाड़ों की एक गुफा में ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन्होंने योग की शिक्षा प्राप्त की। गुफा में साधना, कठोर अनुशासन का व्रत लिया और व्यक्तित्व के विकास के लिए अनेक कर्म किये। वे लोगों के बीच गये, जो मिला वही खाया। वे पिछड़े और समाज के अंतिम व्यक्ति यानि अछूतों के साथ रहे। उन्होंने 1888 में एक शिव मंदिर का निर्माण कराया और ब्राह्मणों की मान्यता को झूठा साबित किया कि मंदिर में केवल हिन्दू पुजारी ही प्रवेश कर सकता है। इस मंदिर में सभी को आने का निमंत्रण दिया। उन्होंने मंदिर के दीवारों पर लिखा, ''जाति, घृणा, ईर्ष्या और अंधविश्वास आदि के आधार पर मजबूत हो चली दीवार को तोड़ दो तथा भाईचारे का बीज बोओ ताकि लोग साथ रह सकें।''

सामाजिक कार्य

श्री नारायण गुरू ने एक संगठन बनाया जो आजकल ' श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' के नाम से जाना जाता है और श्री नारायण धर्म का प्रचार–प्रसार करता है। उन्होंने अपने बनाये मंदिर के पास ही एक आश्रम का निर्माण करवाया था, जिसकी देखरेख श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् के द्वारा किया जाता है। उन्होंने 1904 में कोझीकोड़ के तटीय उपनगर के वर्कला में एक शांत पर्वतीय स्थल शिवगिरी में अपना सार्वजनिक गतिविधि केन्द्र स्थापित किया और 1928 में यहीं पर अपनी महासमाधि तक साधना करते रहे। यहाँ उन्होंने दो मंदिर और एक मठ का भी निर्माण करवाया। उन्होंने 1913 में अद्वैतवाद दर्शन के

प्रचार के लिए अद्वैतवाद आश्रम की स्थापना अलवाय में की। इसके साथ ही उन्होंने एक संस्कृत विद्यालय भी स्थापित किया। उन्होंने 1920 में त्रिशूर में एक कारामुक्कू मंदिर बनवाया, जिसमें किसी देवता के बजाय एक दीपक स्थापित है, जिसका संदेश '' चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश'' है। उन्होंने 1922 में मरूक्कुमपुझा में एक मंदिर बनवाया जिसमें देव प्रतिमा की जगह ''सत्य,धर्म प्रेम, दया '' लिखवाया गया है। सन्1924 में गुरूजी ने एक मंदिर बनवाया जिसके गर्भ गृह में एक दर्पण लगवाया गया है। सामाजिक बदलाव के लिए उन्होंने संगठन, शिक्षा और आर्थिक विकास तीन उपाय सुझाये थे। आज केरल में श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् संस्था का प्रयास सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विकास में स्पष्ट दिखाई देता है। इस संस्था की निम्नांकित मांगें थीं:–

1.पब्लिक स्कूलों में प्रवेश का अधिकार,

2.सरकारी नौकरियों में भर्ती करना,

3.सड़कों का निर्माण व मंदिरों में सबके लिए प्रवेश

4.पिछड़ी जाति के लोगों का राजनीति में प्रतिनिधित्व देना आदि।

आध्यात्मिक दर्शन

श्री नारायण गुरू का विश्वास मुख्यतः अद्वैतवाद में था। वे एक ऐसे धर्म की खोज कर रहे थे, जिसमें नीची जातियों सहित सभी लोग स्वाभिमान से जी सकें। उन्होंने उस समय के प्रचलित देवी देवताओं की पूजा के लिए लोगों को निरूत्साहित किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य के लिए एक जाति, एक धर्म और एक ही ईश्वर होना चाहिए। वे अन्य महान संतों एवं महापरुषों की तरह सत्य की खोज निर्जन स्थान में करते हैं। वे योग की साधना एक तपस्वी के तौर पर करते हैं। वे कर्म में विश्वास करते हैं किन्तु एक योगी के तत्वों से भरपूर हैं। वे मोहमाया से विरत एक ज्ञानी हैं। वे समाज की जरूरत को भी महसूस करते हैं और उनका धर्म प्राण एक बौद्धिक रूप में स्थापित होता है। उनका हृदय दिव्य प्रकाश से आलोकित होता रहता है।

उनकी रचनाएँ

उन्होंने अपनी मान्यताओं एवं दर्शन के लिए अनेक ग्रंथों की रचना की थी। 'अनुभूति दशकम', 'अद्वैत दीपिका' तथा 'स्वानुभूति गीति', 'कुंडलिनी पट्टू' नामक की काव्य रचना में पतंजलि योग साधना के सोपान दिए गए हैं। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद को आध्यात्मिक स्वरूप दिया था किन्तु नारायण गुरू ने उन्हें एक बौद्धिक वर्ग बना दिया और इस परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य किया। किन्तु इसमें दीन हीन पीड़ित और जन साधारण के हित को ध्यान में रखा। उनकी अन्य रचनाओं में 'दर्शनमाला', 'आत्मोपदेश शतकम', 'दैव

दशकम' आदि प्रमुख हैं। उनकी कृतियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

दार्शनिक कृतियाँः आत्मोपदेश शतकं, दैव शतकं, दर्शनमाला, अद्वैतदीपिका, अरिव, ब्रह्मविद्यापंचकं, निर्वृतिपंचकं,श्लोकत्रयी, होममंत्रं, वेदान्तसूत्रं।

प्रबोधनः जातिनिर्णयं, मतमीमांसा, जातिलक्षणं, सदाचारं, जीवकारूण्यपंचकं, अनुकम्पादशकं, धार्म्म, आश्रमं, मुनिचर्यापंचकं, गद्य, गद्यप्रार्त्थना, दैवचिन्तनं, आत्मविलासं, चिज्जढचिन्तकं।

अनुवादः ईशावास्योपनिषत्, तिरूक्कुरकल।

स्तोत्रः शिवस्तोत्र, शिवप्रसादपंचकं, सदाशिवदर्शनं, शिवशतकं, अर्द्धनारीश्वरस्तवं, मननातीतं, चिज्जढ़ चिन्तनं, कुण्डलिनीपाट्ट, इन्द्रियवैराग्यं, शिवस्तवं, कोलतीरेशस्तवं, स्वानुभवबीति, पिण्डनन्दि, चिदंबराष्टकं, तेवारपतिकंकळ्, सुब्रह्मण्यस्तोत्रं, षण्मुखस्तोत्रं, षण्मुखदशकं, षामातु रस्तवं, सुब्रह्मण्य कीर्तनं, नवमंजरी, गुहाष्टकं, बाहुलेयाष्मकं, देवीस्तोत्रं, विष्णुस्तोत्रं, श्री वासुदेवाष्टकं, विष्णुवष्टकं।

तत्कालीन महापुरुषों की नजर में नारायण गुरू

महात्मा ज्योतिबा फूले महाराष्ट्र में छुआछूत मिटाने हेतु आन्दोलन चला रहे थे। एक बार उनकी मुलाकात श्री नारायण गुरू से हुई। नारायण गुरू ने आम जन की सेवा के लिए फूले की सराहना की। नारायण गुरु मूर्ति पूजा से असहमत थे लेकिन उन्होंने राजाराम मोहनराय की तरह मूर्ति पूजा का विरोध नहीं किया। वे अपने ईश्वर को आम आदमी से जोड़ना चाहते थे। वे यह जुड़ाव बिना भेदभाव के चाहते थे। रविन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा कि मैंने देश विदेश में अभी तक महात्मा श्री नारायण गुरू से अधिक आध्यात्मिक रूप से महान व्यक्ति को नहीं देखा। रोम्यारोला ने कहा कि वे कर्मशील, धार्मिक तथा बौद्धिक ज्ञानी थे। उन्हें सामाजिक आवश्यकता की जानकारी थी। उन्होंने दक्षिण भारत में दबे–कुचले लोगों को उठाने में महान योगदान दिया। महात्मा गांधी ने कहा कि उन्होंने हरिजनोद्धार की गतिविधि श्री नारायण गुरू के दृष्टिकोण को स्वीकार किया है।

आधुनिक केरल के निर्माता श्री नारायण गुरू

श्री नारायण गुरू को आधुनिक केरल के निर्माणकर्ता कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। केरल में लगभग 26.56 प्रतिशत मुसलमान एवं 18 प्रतिशत ईसाई हैं। इसका अर्थ है कि लगभग 45 प्रतिशत गैर हिन्दू केरल में निवास करते हैं और इस कारण इस प्रदेश पर भाजपा और आर.एस.एस की नजर बराबर बनी रहती है। इसमें दंगा कराने की हर कोशिश इनके द्वारा की

जाती है किन्तु केरल में वे कामयाब नहीं होते हैं। इसका श्रेय श्री नारायण गुरू को ही जाता है। जी.अलोसियस ने श्री नारायण गुरू के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा है कि केरल के सबसे निर्णायक ऐतिहासिक काल में एक सक्रिय सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सुधारक के रूप में उन्होंने करीब चार दशकों तक अपनी भूमिका निभाई। किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में अपने व्यक्तित्व एवं कार्यों से एक नृजातीय समूह को आधुनिक समूह में रूपान्तरित करने वाले व्यक्ति श्री नारायण गुरू स्वामी मूर्त प्रतीक हैं। जातिवादी इतिहासकारों ने उन्हें एक क्षेत्रिय नेता और समाज सुधारक के रूप ही दर्शाया है और निम्नजातीय लेखकों ने उन्हें इजवा धार्मिक सुधारक बताया है किन्तु यह सत्य नहीं है। सबसे प्रमुख बात है कि वे आधुनिक केरल के पहले वास्तुकार हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक योग्य संगठनकर्ता थे। उन्होंने बहुत सी संस्थाओं की स्थापना में अपनी भूमिका निभाई। उन्होंने वास्तव में केरल में बहुमुखी विकास एवं राजनीतिकरण की जमीन तैयार की।

श्री नारायण गुरू ने ओरू जाति, ओरू मदम, ओरू दैवम्–मनुष्यन्–का– नारा दिया जिसका अर्थ मनुष्य का एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर है। इसे उन्होंने 1914 में अपनी रचना जातिनिर्णयम् में शामिल किया और 1920 में इसे अपने जन्म दिन के अवसर पर संदेश के तौर पर घोषित किया। यहाँ उन्होंने जाति को एक व्यापक अर्थ में देखा है। उनका मानना है कि मनुष्य केवल एक ही प्रजाति है। उन्होंने वर्ण व्यवस्था पर आधारित जाति व्यवस्था को चुनौती दी और कहा, '' ओरू योनि, ओरू आकारम्, ओरू भेदावुम्इल्ला इतिल् यानि सारे इंसान योनि से पैदा होते हैं, मनुष्य का आकार भी एक ही तरह का होता है। इसमें कोई भेदभाव नहीं है। फिर जाति के आधार पर भेद क्यों? 1921 में उन्होंने विश्व भाईचारा सम्मेलन का आयोजन किया था। इसके लिए उन्होंने जो संदेश लिखा उसका अर्थ है कि सभी प्रकार की बोली और भाषा के अन्तर के बावजूद हमें सृष्टि ने एक ही तरह का बनाया है। मनुष्य केवल मानव जाति है और मानव जाति को उन्होंने एक सूत्र में पिरोने का कार्य अपने जीवन के अंतिम क्षण तक किया।

देहावसान

20 सितम्बर 1928 को 74 वर्ष की आयु में महान संत, समाज सुधारक, केरल के निर्माता और समतामूलक समाज बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील श्री नारायण गुरु का देहावसान हो गया। इस दिन को केरल में श्री नारायण गुरु समाधि दिवस के रूप में मनाया जाता है। केरल आज उनके आदर्श के बेहद करीब है और विकास सूचकांक में विश्व के अनेक देशों की बराबरी करता है।

विद्रोही संत रविदास

ओशो रजनीश ने संत शिरोमणि रविदास जी से संबंधित एक किताब लिखी है, जिसका नाम 'आग का फूल' है। उन्होंने कहा है कि ब्राह्मण झूठी कहानियाँ गढ़ने में बहुत ही शातिर हैं। उन्होंने भक्त रविदास को वैचारिक रूप से मारने के लिए झूठी कहानी गढ़ी। कहानी है कि पूर्व जन्म में रविदास ब्राह्मण थे। अपने गुरू रामानंद के आदेश पर वे भिक्षा मांगकर लाये और उसका प्रसाद बनाया गया। उस प्रसाद को ठाकुरजी को भोग लगाने के लिए परोसा गया और ठाकुरजी ने प्रसाद लेने से इंकार कर दिया। रामानंद ने ध्यान लगाया और पता लगाया कि ठाकुर जी ने प्रसाद क्यों नहीं ग्रहण किया? उन्हें ध्यान में पता चला कि रविदास भिक्षाटन में जो अन्न लाया था, किसी बनिया के घर का था और उस बनिया को अन्न किसी अछूत के घर से मिला था। इसलिए ठाकुर जी ने भोग लगाने से इंकार कर दिया। गुस्सा में रामानंद ने रविदास को शूद्र के घर में पैदा होने का श्राप दिया। रविदास ने उसी क्षण देह त्याग दिया और शूद्र के घर में पैदा हुए। पैदा होते ही उन्होंने अपनी शूद्र माता का दूध पीने से मना कर दिया। तब उस चमइन ने रामानंद को बुलाया और बच्चे को दिखाते हुए दूध नहीं पीने का कारण पूछा। रामानंद ने उस बालक को पहचान लिया और कहा कि यह तो अपना वही ब्राह्मण शिष्य है, जिसे हमने श्राप दिया था। उन्होंने बालक को राम नाम की घुटी पिलाई तब जाकर उस बच्चे ने अपनी माँ का दूध पिया।

ओशो कहते हैं कि ब्राह्मणों ने क्या कहानी गढ़ी है। ठाकुर जी भी ब्राह्मण और शूद्र के अन्न में अंतर करने लगें, तो क्या वे ठाकुर जी हैं? उनकी नजर में तो ब्राह्मण और शूद्र में कोई अंतर हो ही नहीं सकता। कहानी में सबसे दिलचस्प है कि अन्न बनिया के घर से लाया गया था किन्तु वह बनिया को किसी शूद्र के घर से मिला था। इसका अर्थ है कि भिक्षा किसी शूद्र के घर का हो ही नहीं सकता है। अर्थात् अन्न शूद्र के घर का होने के कारण शूद्र हो जाता है। ऐसा बकवास केवल ब्राह्मण ही कर सकता है। आश्चर्य है कि एक बालक जन्म लेते ही यह समझ जाता है कि उसकी माँ एक चमइन है और वह दूध पीने से मना कर देता है। क्या एक बालक को गर्भ से बाहर आने के समय जातियों के भेदभाव का ज्ञान हो सकता है? क्या इसे एक सुधी व्यक्ति का मानस स्वीकार कर सकता है? बिल्कुल स्वीकार नहीं करेगा। वह नवजात बच्चा रामानंद से शिष्यत्व प्राप्त

करता है, इससे हास्यास्पद बात क्या हो सकती है? बौद्धों में दया, करूणा, भाईचारा, समानता, स्वतंत्रता और न्याय जन्मजात होते हैं। रविदास में ये गुण उनके पूर्वजों के बौद्ध होने के कारण विरासत में मिले थे। वे मध्यकालीन भारत में जातीय भेदभाव और छुआछूत के विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों को खुली चुनौती दे दी और कहा कि भगवान को पूजने का अधिकार केवल आपको ही नहीं है। भगवान की आराधना जाति देखकर नहीं होती है। उन्होंने कहा, ''जाति– पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'' यह साधारण बात नहीं है। यह ब्राह्मण पुजारियों के लिए एक खुली चुनौती है।

जन्म एवं जन्म स्थान

संत शिरमौर्य गुरू रविदास जी का जन्म सम्वत 1433 को गोबर्द्धनपुरा, वाराणसी में हुआ था। इनके पिता का नाम राघव और माता का नाम कर्मा देवी था। भारतीय समाज व्यवस्था के अनुसार सबसे नीची समझी जाने वाली चमार जाति में जन्मे रविदास ने अपने कर्म और भक्ति की बदौलत ब्राह्मण और पुजारियों के लिए एक चुनौती और आम लोगों के लिए एक नायक बनकर शूद्र जाति का मस्तिष्क ऊँचा कर दिया था।

सामाजिक स्थिति

जिस समय रविदास जी का जन्म हुआ था, उस समय देश में छुआछूत, जाति–पांति, उंच–नीच, धार्मिक आडम्बर और कर्मकांड चरम पर था। इस देश में सिंह जैसा हिंसक जानवर पर माता दूर्गा सवारी करती हैं, चूहा पर गणेश जी विचरण करते हैं। उल्लू पर लक्ष्मी जी, तो हंस पर सरस्वती जी दुनिया की सैर करती हैं। कुता भैरव बाबा है। भगवान विष्णु ने सुकर अर्थात् सुअर बनकर पृथ्वी को ही उठा लिया है। मछली मत्स्यावतार है। बन्दर का क्या पूछना, वह तो साक्षात् हनुमान जी हैं। पीपल पूज्य है। वट वृक्ष वट सावित्री के नाम से पूजा जाता है। तुलसी हर घर की शोभा और पूज्य है। अर्थात् पशु– पक्षी और पेड़ – पौधे देवता और पूज्य थे किन्तु बहुसंख्यक जातियाँ शूद्र और अछूत थीं। वे इंसान की शक्ल में दिखाई देते थे किन्तु वास्तव में वे जानवरों से भी निकृष्ट थे। अछूत एक साथ दो नए कपड़ा नहीं पहन सकते थे। अछूतों को केवल काला कपड़ा पहनने का आदेश था। वह दिन के बारह बजे अपने घर से निकलता था, ताकि उसकी परछाईं से कोई अपवित्र नहीं हो जाए। उसे अपने हाथ में घंटी लेकर चलना पड़ता था, जिससे उसके आने की सूचना सवर्णों को हो जाए और वे रास्ता छोड़ दें। उन्हें थूकने के लिए अपने गले में मटका बांधना पड़ता था। उन्हें जमीन पर थूकने की भी आजादी नहीं थी। वे कमर में झाड़ू बांध कर चलते थे, ताकि उनके पैरों के निशान मिट जाएँ। उन पैरों पर सवर्णों के पैर पड़ने से वे अपवित्र हो जाते थे। उन्हें गांव के दक्षिण टोला में रहने को मजबूर किया गया था। ऐसी मान्यता थी कि दक्षिण से हवा बहुत कम बहती है। उनके ऊपर से हवा आने से

भी सवर्ण अपवित्र हो जाते थे। वे सार्वजनिक तालाबों और नदियों से पानी नहीं पी सकते थे। ऐसा करने पर दंड का विधान था। शूद्र और अछूत जातियों के लिए मंदिर के दरवाजे हमेशा के लिए बंद थे। शिक्षा के एक शब्द भी कान में पड़ने पर कान में गर्म तेल भर दिया जाता था। ऐसे ही सामाजिक वातावरण में संत शिरोमणि रविदास जी का जन्म हुआ था। इन परिस्थितियों ने रविदास जी को विद्रोही बना दिया।

डाक्टर हजारी प्रसाद ने लिखा है कि जिस समय रविदास जी का जन्म हुआ था, उस समय इस्लाम धर्म का भारत में आगमन हो गया था। उसमें भाईचारा था। उसमें समानता का संदेश था और इन तत्वों ने भारत की अछूत जातियों को प्रभावित किया। इस कारण देश में धर्माण्तरण होने लगा। अतः तत्कालीन समाज सुधारकों ने अछूतों को धर्मांतरण से रोकने के लिए भक्ति आन्दोलन चलाया। इसके लिए दो आचार्यों स्वामी रामानंद और महाप्रभु बल्लभाचार्य को श्रेय दिया जाता है। इनसे पूरा उत्तर भारत प्रभावित हुआ। रविदास रामानंद के शिष्य थे। महत्वपूर्ण सवाल है कि जब शूद्रों की छाया मात्र से लोग अपवित्र हो रहे थे, तो रामानंद ने रविदास जी को अपना शिष्य कैसे बनाया? ऐसा प्रतीत होता है कि रविदास जी के विद्रोह की धारा को मोड़ने का यह एक प्रयास है।

जातिभेद पर प्रहार

संत रविदास ने जाति भेद की व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया। उन्होंने कहा कि देश की एकता और अखंडता, शांति और साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए जाति एक महारोग है। इसको समाप्त किए बगैर समाज में सद्भावना का विकास नहीं होगा। मानव एक जाति है। इसलिए सभी को एक समान समझना और उनसे प्रेम करना चाहिए। उन्होंने कहा,

जाति– पांति के फेर में,
उलझि रहे, सब लोग,
मानुषता को खात है,
रैदास जाति का रोग।

जन्म के कारण श्रेष्ठता का विरोध

उन्होंने जन्म के आधार पर ऊँच – नीच होने का विरोध किया और कर्म के आधार पर ऊँच – नीच होने का समर्थन किया है। यद्यपि तुलसी दास ने भी एक कविता में कर्म को प्रधान माना है और कहा कि कर्म प्रधान विश्व करि रखा, जो जस करही, तसही फल चाखा। गुरू जी ने कहा है,

रैदास जन्म के कारणे,

होत न कोई नीच,

नर को नीच कर डारि है,

ओछे करम की कीच।

रविदास जी कहते हैं कि जन्म के कारण कोई नीच नहीं होता है। मनुष्य को उसकी करनी का कीचड़ ही नीच बनाता है।

छुआछूत का विरोध

उन्होंने छुआछूत पर प्रहार करते हुए कहा है कि हमारा भी शरीर चमड़ा से बना है और तुम्हारा भी शरीर चमड़ा से बना है। ऐसा संसार में कौन पुरुष है, जो चमड़ा के बिना बना है। इस प्रकार जब सभी चमड़ा से बने हैं तो कोई नीच और कोई ऊँच कैसे हो सकता है? उनके ही शब्दों में,

हम भी चाम के तुम भी चाम के,

कौन चाम से न्यारा,

बिना चाम का कौन परुष है,

जो दीखत परै संसारा।

आदर्श राज्य की परिकल्पना

तत्कालीन राज व्यवस्था पर भी उन्होंने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रहार किया है। उन्होंने एक आदर्श राज्य की कल्पना की है, जो उस समय की मांग थी। उन्होंने कहा कि राज्य ऐसा होना चाहिए, जिसमें कोई छोटा नहीं हो और कोई बड़ा नहीं हो। उस राज्य के किसी नागरिक को खाने की कमी नहीं हो। यदि ऐसा राज्य होगा, तो चारों तरफ खुशी होगी। उन्होंने कहा,

ऐसा चाहूँ राज मैं,

जहां मिले सबन को अन्न,

छोटा बड़ा सब सम बसे,

रैदास रहें प्रसन्न।

गंगा स्नान पुण्य प्राप्ति का खंडन

हिन्दू धर्म में गंगा स्नान को काफी महत्वपूर्ण और पुण्यदायी माना गया है। गंगा स्नान का अधिकार शूद्रों और अछूतों को नहीं था। गंगा स्नान करने वाले अपनी पवित्रता की डींग हाँकते थे। गंगा स्नान को पाप से छूटकारा का

माध्यम बताया जाता था। रविदास जी ने गंगा स्नान से पाप से मुक्ति और आडम्बर का बड़े ही सरल शब्दों में विरोध किया और कहा, '' मन चंगा तो कठौती में गंगा।'' अर्थात् मन पवित्र हो तो कहीं भी स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होगी। इसके लिए गंगा स्नान की कोई आवश्यकता नहीं है।

हिन्दू धर्मशास्त्रों का विरोध

रविदास जी भक्ति मार्ग को श्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने चारों वेदों का खंडन किया और उनके विधानों को चुनौती दी। उन्होंने कहा,

चारिउ वेद किया खण्डौति,

जब रैदास करैं दण्डौति।

इसको हम कह सकते हैं कि रैदास की भक्ति के सामने वेदों के मंत्र का स्वतः ही खंडन हो जाता है। भगवान की भक्ति के लिए वेदों का कोई महत्व नहीं है और उनका वेद के प्रति कोई आस्था और विश्वास भी नहीं हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा, ''संत समागमो यव निब्बान पतिया'' अर्थात् जीवन पर्यन्त संत लोगों की संगति करें। इसी बात को रविदास जी अपने शब्दों में कहते हैं,

गली गली को जल बहि आओ,

सुरसरि जाए समायो,

संगति के परताप महातम,

नाम गंगाजल पायो।

रविदास जी मानते हैं कि अच्छे लोगों की संगति में ही गंगा जल की पवित्रता है। इसलिए हर गली और मुहल्ले से जल की धारा बन कर नदी में मिल जाओ। इस सम्मिलन का प्रताप बहुत अधिक है और यह प्रताप ही गंगा जल जैसा पवित्र है।

बुद्ध दर्शन

बुद्ध की तरह रविदास जी ने भी सत्य और संयम को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने कहा,

सांचा सुमिरन नाम बिसासा,

मन बचन कर्म कहै रैदासा।

अर्थात् मन, वचन और कर्म से सत्यानुस्मृति चित से पूर्ण होना ही संयम है। वास्तव में रैदास और कबीर ने गंवई भाषा में बुद्ध के दर्शन को समाहित कर

आम लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया और हिन्दू धर्म के प्रति पनपते आक्रोश को एक नया आयाम दिया। इसका परिणाम हुआ कि तेजी से हो रहे धर्मांतरण को उन्होंने रोक दिया। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, कि हिन्दू धर्म की विकृति को रोककर भारत के बहुसंख्यक दलितों और पिछड़ों को हिन्दू धर्म से बाहर जाने से रोक कर हिन्दू धर्म को बचा लिया।

कर्म की प्रधानता

काम करते हुए भी भक्ति हो सकती है। कोई भी काम छोटा नहीं होता। प्रायः रविदास जी को जूता बनाते हुए दर्शाया गया है। इसके दो निहितार्थ हो सकते हैं। एक यह कि रविदास जी महान संत होने के बाद भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के नियमानुसार अपना पेशा करते रहे। वे चमार थे और संत होने के साथ ही साथ अपना चमड़ा का कारोबार करते रहे। दूसरा, उनको नीचा दिखाने के लिए जूता बनाते दिखाया गया हो। जूता बनाना चमारों का एक पेशा है और संत होकर भी रैदास ने अपनी जाति के पेशा को नहीं छोड़ा। अर्थात् शूद्र कितना भी महान हो, वह अपनी नीचता के पेशा को नहीं छोड़ता है। आश्चर्य तब होता है कि संत रविदास के शिष्य बड़े – बड़े राजा और रानी थे। उनके शिष्यों में प्रमुखता से मीरा और रानी झाली का नाम लिया जाता है। रविदास की भक्ति इतनी महान थी कि उनके शिष्य बनारस तक सीमित नहीं थे बल्कि पूरे देश में थे। रानी झाली तो राजस्थान की थी। ऐसी परिस्थिति में भी रविदास जी जूता बनाते थे ।

रविदास जी का आत्मसातीकरण

रविदास जी के संबंध में अनेक कहानियाँ मसलन गंगा द्वारा कंगन देना, गोरखनाथ के घमंड को चूर करने के लिए चारों तरफ दिखाई देना, शालीग्राम का पानी में तैरना, ब्राह्मणों से प्रतिस्पर्द्धा आदि कही जाती हैं। यह सामान्य सा चमत्कार जानकर हमारे लोगों का मन रविदास जी की भक्ति से भर उठता है। किन्तु यह ब्राह्मणों द्वारा रविदास जी को आत्मसात करने के लिए गढ़ी गयी कहानियाँ हैं। एक चमार की भक्ति को ब्राह्मण स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए पूर्व जन्म में ब्राह्मण होने की कहानी कही गयी है। उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए उनकी भक्ति को स्वीकार करने के लिए पूर्व जन्म का ब्राह्मण कहा गया है। अर्थात् रविदास की श्रेष्ठता इसलिए स्वीकार्य है क्योंकि वे पूर्व जन्म में ब्राह्मण थे। चमार होने के कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार नहीं है, पूर्व जन्म के ब्राह्मण होने के कारण लोग उनके शिष्य बने थे। इसे साबित करने के लिए ही ये कहानियां, घटनाएं गढ़ी गयी हैं।

सतनामी सम्प्रदाय के जनक श्री गुरू घासीदास

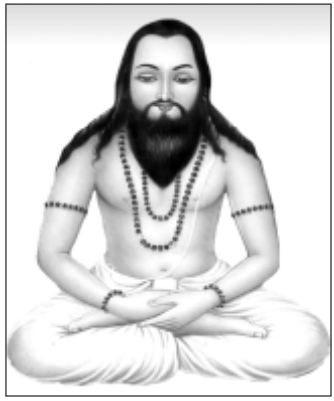

गुरू घासीदास जी का जन्म जिस समय हुआ था, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के इलाकों के किसानों द्वारा गायों से खेती करने का रिवाज था। पशु बलि का बोलबाला था। छुआछूत और जाति–पांति चरम पर था। समाज में ब्राह्मण को सर्वोच्च दर्जा हासिल था। वर्ण और जाति के आधार पर लोगों का विभाजन किया गया था। इसी आधार पर समाज में लोगों का स्थान निर्धारित था। स्थानीय स्तर पर समाज में शराब का सेवन होता था, जिससे परिवार में कलह और विघटन होता था। सामाजिक कुरीतियाँ समाज को कमजोर कर रही थीं। पशुओं के साथ ही अन्य शूद्र और अछूत जातियों के साथ क्रूरता का व्यवहार किया जाता था। इन सामाजिक कुप्रथाओं के प्रभाव ने गुरू घासीदास के बचपन को झकझोर कर रख दिया था और वे इसका समाधान चाहते थे।

जन्म एवं जन्म स्थान

गुरू घासीदास का जन्म 18 दिसम्बर 1756 को रायपुर जिला के बलोदाबाजार तहसील के गिरौदपुरी में हुआ था। उनके पिता का नाम महंगुदास और माता का नाम अमरौतिन देवी था। उनका विवाह सफुरा नामक महिला से हुआ था। उनकी पत्नी भी एक धर्मपरायण महिला थीं। बचपन में ही बालक घासीदास के मन में वैराग्य की भावना विकसित होने लगी थी। वे समाज में व्याप्त पशुबलि तथा अन्य कुप्रथाओं का बचपन में ही विरोध करने लगे थे।

शिक्षा एवं साधना

ऐसी मान्यता है कि गुरू घासीदास जी को सारंगढ़ तहसील, बिलासपुर रोड जिला रायगढ़ में एक वृक्ष के नीचे तपस्या करने से ज्ञान की प्राप्ति हुई। जहाँ उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, वहाँ आज गुरू घासीदास पुष्पवाटिका स्थापित है।

सामाजिक कुप्रथाओं के खिलाफ आन्दोलन

ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने अपनी शिक्षा और उपदेशों के माध्यम से समाज में व्याप्त छुआछूत, मूर्तिपूजा, जाति– पांति जैसी सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने जातिगत विषमताओं को नकार

दिया। उन्होंने ब्राह्मणों के सामाजिक वर्चस्व को चुनौती दी। वर्णों के आधार पर बनी खाई को पाटने का प्रयास किया। समाज के हर व्यक्ति को एक समान घोषित किया। मूर्ति पूजा को नकार दिया। उनका यह मानना था कि मूर्ति पूजा और उच्च वर्ण के लोगों में गहरा संबंध है।

वे हर प्रकार की क्रूरता के विरोधी थे। उन्होंने लोगों को पशुओं से प्रेम करना सिखाया। उन्होंने सतनाम पंथ चलाया जिसके अनुसार, खेती में गायों का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। उनकी शिक्षा आम जनता के अनुकूल और व्यावहारिक थी, जिसका समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उनकी शिक्षाओं का प्रभाव छत्तीसगढ़ के प्रथम स्वतंत्रता सेनानी वीर नारायण सिंह पर काफी पड़ा था। उनकी शिक्षाओं का प्रचार – प्रसार लोक गीतों, लोक कथाओं और लोक नृत्यों के माध्यम से हुआ। प्रायः उनके गीतों को पंथी गीत के नाम से जाना जाता है। सतनामी गीतों को छत्तीसगढ़ की एक लोक विधा के नाम से मान्यता मिली हुई है। सत्य का साक्षात्कार ही सतनामी पंथ का मूल सिद्धान्त है। उन्होंने समाज में भाईचारा और एकता का पाठ पढ़ाया और हर मनुष्य को समान बताया। वह सदैव सात्विक जीवन जीते थे और लोगों को सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा भी देते थे। उनका पूरा जीवन लोगों की सेवा के लिए समर्पित था।

सात सिद्धान्त

गुरू घासी दास ने सात सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया था, जिसे सप्तसिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। वास्तव में यह उनके सात वचन हैं, जो निम्नांकित हैंः–

1. सतनाम को मानो
2. मूर्ति पूजा मत करो,
3. जाति–पांति के प्रपंच से दूर रहो,
4. मांसाहार मत करो, जीव हत्या मत करो,
5. पर स्त्री को माता मानो,
6. मदिरा सेवन मत करो,
7. अपराह्न में खेत में मत जाओ।

उन्होंने कहा, '' मनसे मनसे एक समान अर्थात् मनुष्य – मनुष्य एक समान हैं। उन्होंने कहा वर्ण भेद से दूर रहो। गुरूजी के द्वारा दिए गये उपदेशों से समाज के असहाय लोगों, वंचितों और अछूतों के जीवन पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। इससे उनके व्यक्तित्व में बदलाव आया। उनमें आत्मविश्वास का संचार हुआ। वे लोग अपने को पहचान पायें कि वे भी इंसान हैं। उनमें अत्याचार से लड़ने की

भावना का विकास हुआ। गुरूजी का सिद्धान्त इतना व्यावहारिक था कि बहुत कम समय में ही उनके चार लाख से ज्यादा अनुयायी हो गये।

सामाजिक कार्य

गुरू घासीदास को सतनाम पंथ का संस्थापक माना जाता है। वे जीवन पर्यन्त सतनाम पंथ का प्रचार – प्रसार करते रहे। उन्होंने समाज को एक नया विचार और नई उर्जा दी। उन्होंने पशुबलि, जाति – पांति, छुआछूत और भेदभाव का पूर्ण विरोध किया। इसके लिए उन्होंने पूरे छत्तीसगढ़ में भ्रमण किया। उनके विचार बौद्ध और हिन्दू धर्म के आदर्शों से मिलकर विकसित हुआ और मध्यम मार्गी था। उनका सबसे ज्यादा जोर सत्य पर था। उन्होंने सत्य के प्रतीक को खड़ा किया जिसे जैतखाम के नाम से जाना जाता है। यह लकड़ियों का ढेर होता है जिसे सफेद रंग से रंगा जाता है और उसके शीर्ष पर सफेद झण्डा फहरता रहता है। सफेद रंग को सत्य का प्रतीक माना जाता है।

समाज सुधार

हिन्दू धर्म में विभिन्न प्रकार के आडम्बर और कुरीतियाँ थीं। लोगों को वर्ण के आधार पर चार वर्णों में विभाजित किया गया था। चारों तरफ हिंसा का बोलबाला था। अछूतों एवं शूद्रों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। ऐसे समय में श्री गुरू घासीदास जी का अवतरण हुआ था। उन्होंने पूरे समाज में अपना संदेश फैलाया और कहा, मनखे मनखे एक समान अर्थात् हर मनुष्य एक समान है। छुआछूत मनुष्य के साथ होने वाला अपराध है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, करूणा तथा जीवन का ध्येय उदात्त बनाने पर जोर दिया। यही उनके जीवन का दर्शन एवं प्रकाश स्तम्भ रहा।

जैतखाम की स्थापना

सरकार ने छतीसगढ़ के रायगढ़ से करीब 145 किलोमीटर पर श्री गुरू घासीदास के जन्म स्थान गिरोदपुरी में एक विशाल स्तम्भ जैतखाम का निर्माण कराया है जिसकी उँचाई 253 फीट बतायी जाती है। कहा जाता है कि यह स्तम्भ दिल्ली के कुतुबमीनार से भी ऊंचा है। प्रत्येक वर्ष 18 दिसम्बर को छत्तीसगढ़ में गुरू जी की जयंती धूमधाम से मनायी जाती है। विशेष कार्यक्रम गुरू घासीदास जी की पुष्पवाटिका में मनाया जाता है, जो दो से तीन दिन तक चलता है। उनके मानने वालों को सतनामी के नाम से पुकारा जाता है।

भारत के प्रथम दलित राष्ट्रपति डॉ.के.आर.नारायणन के संघर्ष की कहानी

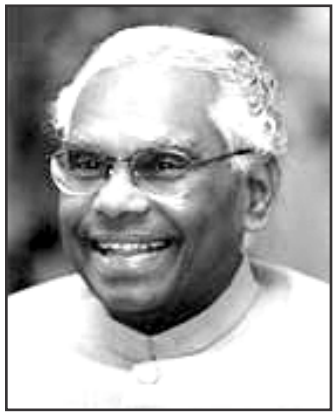

एक नन्हा सा बच्चा गाँव से 15 किलोमीटर की दूरी तय कर विद्यालय जाता है। उसे शिक्षा की भूख ऐसी थी कि वह विद्यालय के बाहर बैठकर और खड़ा होकर अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करता है। बच्चे के पिता के पास विद्यालय का शुल्क चुकाने का सामर्थ्य नहीं था और उसकी सजा बच्चे को दी जाती थी। इन सब के बावजूद वह विद्यालय में हमेशा अन्य बच्चों से अलग दिखता है और हर बच्चे से अच्छा करता है। उस बालक का नाम के.आर.नारायणन है, जो सफलता की विभिन्न सीढियों को चढ़ता हुआ, भारत के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाता है और राष्ट्रपति के पद को अपने कर्तव्यों से गौरव प्रदान करता है।

जन्म और परिवार

डॉ.के.आर.नारायणन का जन्म केरल के त्रावणकोर जिला के पेरूमथॉनम उझावूर गांव में 27 अक्टूबर 1920 को एक दलित परिवार में हुआ था। यद्यपि उनकी जन्म तिथि को लेकर एक विवाद है। कहा जाता है कि उनकी वास्तविक जन्म तिथि 4 फरवरी 1920 है किन्तु नामाकंन के समय उनके चाचा को इस बात की जानकारी नहीं होने के कारण उन्होंने विद्यालय में उनके नामांकन पंजी में 27 अक्टूबर 1920 अंकित करा दिया था, जिसे ऑफिसियली स्वीकार कर लिया गया है। उनका पूरा नाम कोचेरिल रमण नारायणन था। उनके पिता का नाम कोचेरिल रमण विद्यार और माता का नाम पुन्नाथठुरावीथि पप्पियामा था। इनके पिता बहुत ही गरीब परिवार के थे और परवान जाति से ताल्लुक रखते थे। यह जाति मुख्यतः ताड़ी उतारने, मछली पकड़ने अथवा समुद्री व्यवसाय का कार्य करती है। के.आर.नारायणन के पिता जी ने अपना पैतृक व्यवसाय को छोड़कर भारतीय चिकित्सा पद्धति चिकित्सा सिद्धा व आयुर्वेद की गहराई से अध्ययन किया था और इसे ही अपना पेशा बना लिया था जिसके कारण समाज में उनका सम्मान था। नारायणन कुल सात भाई–बहन थे

जिनमें वे चौथे नम्बर पर थे। उनकी बड़ी बहन गौरी होमियोपैथ की डॉक्टर थीं। परिवार में शिक्षा का महत्व था और इनके पिता हमेशा शिक्षा को प्राथमिकता देते थे।

उनकी शिक्षा की शुरुआत उझावूर के अवर प्राथमिक विद्यालय से दोस्तों से किताबों उधार लेकर प्रारम्भ हुई। वे सन् 1931 से 1935 तक आवर लेडी ऑफ लूर्द स्कूल से शिक्षा प्राप्त किए। सेंट मेरी हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा 1937 में उत्तीर्ण हुए। उन्हें स्कॉलरशिप मिला और उसकी मदद से उन्होंने 1940 में सी.एम.एस. स्कूल कोट्टायम से इंटरमिडियेट करने के बाद त्रावणकोर विश्वविद्यालय में दाखिला लिया जहां से उन्होंने 1943 में बी.ए. एवं इंगलिश लिटरेचर में एम.ए. किया। त्रावणकोर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले वे पहले दलित छात्र थे।

पत्रकारिता

अंग्रेजी लिटरेचर में प्रथम श्रेणी में स्नातक और स्नातकोत्तर की शिक्षा पूर्ण कर के.आर.नारयणन दिल्ली चले आये और आजीविका के लिए पत्रकारिता को चुना। वे दी हिन्दू और दी टाइम्स ऑफ इंडिया में काम करने लगे। इसी दौरान उन्होंने 10 अप्रैल 1945 को महात्मा गांधी का एक इंटरव्यू भी लिया था।

लंदन में शिक्षा

उनकी विदेश में पढ़ने की प्रबल इच्छा थी। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। स्कॉलरशिप की व्यवस्था नहीं थी। अतः अपनी विदेश की पढ़ाई के लिए उन्होंने उस समय के ख्यातिप्राप्त व्यवसायी जे.आर.डी.टाटा को एक पत्र लिख दिया। टाटा ने उन्हें निराश नहीं किया और उनकी शिक्षा के लिए मदद की। टाटा की मदद से उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में राजनीति विज्ञान की शिक्षा में दाखिला लिया। अपनी शिक्षा पूरी कर वे 1948 में भारत लौटे।

राजनयिक एवं शिक्षक डॉ. के.आर.नारायणन

डॉ. के.आर.नारायणन के प्रोफेसर लास्की ने उनका परिचय पं. जवाहरलाल नेहरू से कराया और उन्हें आई.एफ.एस. की नौकरी दिलवाई। वे 1949 में बर्मा चले गए। इस दौरान वह दिल्ली विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में पढ़ाने का कार्य भी करते रहे। 1978 में उनका राजनयिक सेवा का कार्यकाल

समाप्त हो गया। उसके बाद वह 1979 से 80 तक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कुलपति रहे। इसी दौरान 1980 में श्रीमती इंदिरा गांधी ने उन्हें एक बार पुनः राजदूत बनाकर अमेरिका भेज दिया, जहाँ वह 1980 से 1984 तक रहे।

राजनीति में प्रवेश

श्रीमती इंदिरा गांधी डॉ.के.आर.नारायणन की प्रतिभा से वाकिफ थीं। उन्होंने डॉ.के.आर.नारायणन से कहा कि राजनीति में आ जाएं। उनके कहने पर डॉ.नारायणन राजनीति में आये। वह केरल के ओट्टपालम संसदीय क्षेत्र से 1984 में चुनाव लड़े और सांसद बन गये। यहाँ से वे तीन बार सांसद चुने गये। श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने तो डॉ. के. आर.नारायणन को केन्द्रीय मंत्रीमंडल में राज्यमंत्री की शपथ दिलायी गयी और उन्हें योजना(1985), विदेश विभाग(1985–86) विज्ञान एवं दूर संचार (1986–89) विभाग का कार्य आवंटित किया गया। इन विभागों की जिम्मेदारी उन्होंने बड़ी ही सफलता के साथ निभाई। भारत में पेटेंट कंट्रोल पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव का उन्होंने विरोध किया था। 1989 में जब कांग्रेस सत्ता से बाहर हो गयी, तब डॉ. के.आ.नारायणन एक विपक्षी सांसद के तौर पर अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहे थे। 1991 में कांग्रेस पुनः सत्ता में आयी किन्तु केरल के तत्कालीन मुख्यमंत्री के.करूणाकरण और उनके राजनीतिक सलाहकार ने उनके मंत्री नहीं बनाये जाने के कारणों का ख़ुलासा करते हुए कहा है कि पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा कम्यूनिस्ट पार्टी का समर्थक बताये जाने के कारण उन्हें दुबारा मंत्रीमंडल में स्थान नहीं मिला था।

रायसीना हिल्स की तरफ बढ़ते कदम

मंत्री बनाया जाना शायद उनकी किस्मत को मंजूर नहीं था। उनका तो रायसीना हील इंतजार कर रही थी। 21 अगस्त 1992 को डॉ. शंकरदयाल शर्मा के राष्ट्रपतित्व काल में उनकी नियुक्ति भारत के उप–राष्ट्रपति के रूप में की गयी। उनके नाम की सिफारिश तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री वी.पी.सिंह द्वारा की गयी थी। इस प्रकार रायसिना हील जहाँ राष्ट्रपति का निवास स्थान है, उस तरफ डॉ. के.आर. नारायणन के पैर बढ़ चुके थे।

राष्ट्रपति डॉ.के.आर.नारायणन

डॉ. शंकर दयाल शर्मा के कार्यकाल की समाप्ति के उपरांत 17 जुलाई 1997 को सर्वसम्मति से डॉ. के.आर. नारायणन को भारत का राष्ट्रपति चुना गया। वे पहले दलित हैं, जिन्हें देश के सर्वोच्च पद पर चयन होने का गौरव हासिल हुआ। इस पद पर 2002 तक रहे। आम तौर पर यह धारणा विकसित की गयी है कि भारत के राष्ट्रपति का पद केवल सम्मान के लिए है। इसे 'रबर स्टाम्प' तक कहा जाता है। परन्तु डॉ. नारायणन ने इस मिथ को तोड़ दिया। कांग्रेस के समर्थन वापसी के कारण इंद्रकुमार गुजराल की सरकार अल्पमत में आ गयी थी और 19 मार्च 1998 को उन्हें त्याग पत्र देना पड़ा। परिस्थितियाँ काफी कठिन थीं किन्तु इस कठिन परिस्थिति को बड़ी सहजता से उन्होंने निबटाया। चुनाव के बाद अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार बनी। उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लगाने की अनुशंसा को उन्होंने दो–बार विचार करने के लिए वापस कर दिया। ऐसा करने वाले वह पहले राष्ट्रपति थे। उन्होंने कभी भी किसी संचिका को सरकार की मंशा से नहीं देखा और नियम के अनुसार ही संचिका पर अपना हस्ताक्षर किया।

भाजपा सरकार द्वारा संविधान की समीक्षा का प्रस्ताव भेजा गया। डॉ. के.आर. नारायणन ने कहा कि संविधान की समीक्षा के बजाए सरकार के कार्यों की समीक्षा की आवश्यकता है। उन्होंने बाबा साहब द्वारा देश को संविधान सौपते हुए संसद को संबोधित किए गए विचारों का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा, डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा कि देश में कही कोई अव्यवस्था होती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान में कोई खोट है। इसका अर्थ है कि देश चलाने वालों की नियत में खोट है। संविधान की समीक्षा के बजाए संविधान के अनुपालन कराने वालों के कार्यों की समीक्षा की जानी चाहिए। इस प्रकार भाजपा को संविधान समीक्षा का विचार त्याग देना पड़ा।

उन्होंने अपने को कभी भी राष्ट्रपति के तौर पर नहीं देखा। उन्होंने हमेशा अपने को कार्यकारी राष्ट्रपति कहलाना पसंद किया। भारत के राष्ट्रपति रहते आम चुनाव के दौरान अपनी पत्नी के साथ लाइन में खड़े होकर मतदान करने वाले वह पहले राष्ट्रपति थे। उन्होंने मानवीय मूल्यों के सवाल पर किसी के साथ कभी समझौता नहीं किया। वह हमेशा वंचितों, अल्पसंख्यकों और समाज के हासिये के लोगों की आवाज बने रहे और अपने दम पर संविधान की रक्षा

करने में सफल रहे। 25 जुलाई 2002 को उनका कार्यकाल समाप्त हुआ। वह अपनी पत्नी ऊषा नारायणन के साथ दिल्ली के पृथ्वी रोड पर रहने लगे।

पुस्तक लेखन

डॉ. के.आर.नारायणन एक राजनयिक, पत्रकार, स्टेट्समैन और एक अच्छे लेखक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकों का लेखन किया है, जिनमें 'इंडिया एंड अमेरिका, एस्सेस इन अंडरस्टैंडिग', 'इमेजेज एंड इनसाइट्स' और 'नन अलाइमेंट इन कन्टेम्परेरी इंटरनेशनल रिलेशंस' महत्वपूर्ण हैं।

पुरस्कार

डॉ. के.आर.नारायणन को अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं। 1998 में उन्हें 'द अपील ऑफ कॉनसाइंस फाउण्डेशन', न्यूयार्क द्वारा 'वर्ल्ड स्टेट्समैन' अवार्ड दिया गया था। टोलेडो विश्वविद्यालय अमेरिका ने उन्हें डॉक्टर ऑफ साइंस, आस्ट्रेलिया विश्वविद्यालय ने डॉक्टर ऑफ लिट्टरेचर की उपाधि प्रदान की है। डॉक्टरेट की उपाधि उन्हें तुर्की और सान कार्लोस विश्वविद्यालय से भी प्राप्त हुई हैं।

परिनिर्वाण

राष्ट्रपति के पद से अवकाश प्राप्त होने के बाद वह देश की स्थिति को लेकर चिंतित रहते थे। इसी बीच उन्हें निमोनिया हो गया। इसके इलाज के लिए उन्हें सेना के अस्पताल, '' आर्मी रिसर्च एंड रैफरल हॉस्पिटल, नई दिल्ली'' में भर्ती कराया गया। किन्तु उनकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया और 9 नवम्बर 2005 को उनका परिनिर्वाण हो गया। दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू के शांतिवन के बगल में उनकी समाधि बनायी गयी है, जिसे 'एकता स्थल' के नाम से जाना जाता है। देश के राजनीतिक इतिहास में उनका नाम देश के एक सच्चे प्रहरी के तौर पर सदैव आदर के साथ लिया जायेगा।

सिद्धू–कान्हू का आन्दोलन

ऐसा माना जाता है कि संथाल परगना के जंगल और तराई में संथाल आदिवासी करीब 1790 से 1810 के बीच बसे थे। यह कहना कितना सच है, नहीं मालूम। परन्तु इस क्षेत्र में महान क्रांतिकारी हुए, इसकी पूरी जानकारी लोगों के पास है। बिरसा ने दस वर्ष की आयु यानि 1885 में आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। उनका आन्दोलन बाहर से आये महाजनों और जमींदारों के खिलाफ था। वह अपनी जमीन और जंगल को बाहर से आये इन महाजनों और भारी लगान की वसूली करने वाले जमींदारों से आजाद कराना चाहते थे। वह निर्दयी जमींदारों से अपनी भूमि को मुक्त कराना चाहते थे। आन्दोलनकारी बिरसा मुण्डा अपने चमत्कारी जीवन के लिए जाने जाते हैं और वह मात्र 25 वर्ष (1875–1900) की आयु में ही दुनिया को अलविदा कह गये किन्तु उनके चमत्कार की कहानी आज भी आदिवासी समाज में गूँजती है। ऐसा माना जाता है कि मुण्डा आन्दोलन अंग्रेजों के खिलाफ हुआ था। लम्बे समय के बाद उन्हें पकड़ लिया गया और उनकी मृत्यु जेल में ही हो गयी थी।

बिरसा मुण्डा की ही तरह महाजनी प्रथा और जमींदारों द्वारा भारी कर वसूली के खिलाफ दो आदिवासी भाइयों ने आन्दोलन किया था। उनमें गजब की चमत्कारी नेतृत्व क्षमता थी। इन आदिवासी भाइयों के आन्दोलन को हूल आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। आदिवासियों का आन्दोलन उनके प्राकृतिक जमीन पर जमींदारों द्वारा बलात् कब्जा करने, अधिक ब्याज पर ऋण देने और ऋण नहीं चुकाने पर जमीन से बेदखल करने और शोषण के खिलाफ था। यह शुद्ध देशी आन्दोलन है और इन आन्दोलनों को कुचलने के लिए

जमींदारों ने अंग्रेजों की सहायता प्राप्त की थी। इस कारण इसे अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन कहा जाता है, जो उचित प्रतीत नहीं होता है।

संथाली आन्दोलन की पृष्ठभूमि

संथाल परगना के जंगल को तराई कहा जाता था और यह बहुत बड़े भू–भाग पर फैला हुआ था। अंग्रेजों द्वारा 1824 में संथाल परगना को 'दामिन ए कोह' घोषित किया गया था। संथाल परगना का क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से भरापूरा था। आदिवासी खेती करने में निपुण और पशुपालन अभिन्न रूप से उनके जीवन से जुड़ा रहा है। वे प्रकृति पूजक और शांति पसंद करने वाले लोग रहे हैं। अंग्रेजों के आने के बाद आवागमन के साधनों में लगातार विकास हो रहा था और व्यवसायी अपने व्यापार के लिए नित नये क्षेत्र की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बस रहे थे। संथाल परगना उनकी नजरों से बच नहीं सका। बड़ी संख्या में जमींदार और व्यापारी संथाल परगना में बस गये। प्रपंच के द्वारा वह आदिवासियों की जमीन पर कब्जा कर उन्हीं आदिवासियों को मोटा लगान पर देने लगे। जमीन को अपने पास रखने के लिए महाजनों से कर्ज लेना पड़ता था और कर्ज नहीं वापस होने पर जमीन आदिवासियों के हाथ से निकल जा रही थी। ऐसा जमींदारों के शोषण की नीति के कारण हो रहा था। इस व्यवस्था के खिलाफ दो वीर भाइयों ने आन्दोलन खड़ा किया, जिसे 'हूल' के नाम से जाना जाता है। इन्हीं दोनों को इतिहास में सिद्धू – कान्हू के नाम से जाना जाता है।

सिद्धू – कान्हू का जन्म

वर्तमान झारखंड प्रदेश के साहेबगंज जिला के बरहेट प्रखंड में भोगनाडीह नामक एक गांव है। इसी गांव में सिद्धू मुर्मू का जन्म 1815 में हुआ था। कान्हू मुर्मू का जन्म सिद्धू मुर्मू के जन्म के पांच वर्ष बाद 1820 में हुआ था। इनके तीसरे भाई का नाम चांद मुर्मू जिनका जन्म 1825 में और भैरव मुर्मू का जन्म 1835 में हुआ था। इनकी दो बहनें भी थीं, जिनका नाम फुलो मुर्मू और झानो मुर्मू था। इनके पिता का नाम चुन्नी मांझी था।

संथाल आन्दोलन (हूल आन्दोलन)

कहा जाता है कि सिद्धू – कान्हू दोनों भाई बहुत वीर थे। उन्हें प्राकृतिक रूप से तीर चलाने का प्रशिक्षण मिला था। सिद्धू ने अपने में दैवी शक्ति होने का भरोसा आदिवासियों को दिलाया। उसने प्रत्येक मांझी परिवार में एक साल की टहनी भेजकर हूल में सम्मिलित होने का संदेश भेजवाया। कहा जाता है कि सिद्धू के आमंत्रण पर 30 जून 1855 को भोगनाडीह गांव में संथाल आदिवासियों के लगभग 400 गांवों से 50000 संथाल एकत्र हो गये।

यह बैठक अपने आप में बिल्कुल अलग प्रकार की थी। इसमें सिद्धू को राजा, कान्हू और चांद को मंत्री तथा भैरव को सेनापति चुना गया। विद्रोह की शुरुआत भोगनाडीह से हुई। संथाल युवक तीर और धनुष से लैस थे और अपने दुश्मनों पर टूट पड़े। इनके पास तीर–धनुष के अलावे कुछ भी नहीं था। उधर जमींदारों एवं अंग्रेजों की सेना के पास आधुनिक हथियार थे। इससे आदिवासी युवकों के मनोबल पर कोई असर नहीं था। उनको सिद्धू में दैविक शक्ति दिखाई दे रही थी और उस पर अटूट विश्वास था। विद्रोहियों ने अपने तीर–कमान से ही अंग्रेजों और जमींदारों को अपने आगे झुकने को मजबूर कर दिया था। इसमें दारोगा महेश लाल और प्रताप नारायण की हत्या कर दी गयी और अंग्रेजों में भय का वातावरण बन गया। अंग्रेजी सेना का नेतृत्व जनरल लॉयर्ड ने किया था, जिसके पास भारी मात्रा में गोला और बारूद था।

अंग्रेजी सेना संथालों से काफी भयभीत हो गयी थी। उनसे बचने के लिए अंग्रेजों ने पाकुड़ में एक टावर का निर्माण करवाया था। यह टावर मुख्यतः संथालों पर नजर रखने के लिए बनाया गया था। आज भी यह टावर पाकुड़ में है और इसे मार्टिलो टावर के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजों ने पहाड़ी के तल में अपना डेरा डाल दिया और झूठा फायर करना शुरू किया। आदिवासी लड़कों ने पूरे जोश से तीर बरसाया। उनके तीर खत्म हो गये। अंग्रेजों के पास बुलेट बचे रहे। जब संथाल युवक पहाड़ी की तलहटी में उतरने लगे, अंग्रेजों ने गोलियाँ बरसायीं और संथालों की हार हो गयी।

सिद्धू को फांसी

भयंकर मुठभेड़ में सिद्धू को अंग्रेजों ने पकड़ लिया और अगस्त 1855 में पंचकठिया नामक स्थान पर एक बरगद के पेड़ पर फांसी दे दी। वह पेड़ आज भी पंचकठिया में है और उसे शहीद स्थल के नाम से पुकारा जाता है। कान्हू को भी पकड़ लिया गया और भोगनाडीह में फांसी दे दी गयी।

यद्यपि दोनों भाइयों को अंग्रेजों ने फांसी दे दी किन्तु वे आज भी संथालों के दिलों में जीवित हैं और सम्मान के साथ याद किए जाते हैं। यद्यपि वे हार गये थे किन्तु इनके आन्दोलन ने अंग्रेजी हुकूमत की जड़ें हिला दीं।

सम्मान

भारत सरकार ने 2002 में इन दोनों भाइयों के नाम पर 4 रूपए का डाक टिकट जारी किया था। कार्ल मार्क्स ने इस विद्रोह को भारत का प्रथम जनक्रांति कहा था। आदिवासियों द्वारा 30 जून को भोगनाडीह में 'हूल दिवस' मनाया जाता है। सरकार द्वारा हूल दिवस के दिन विकास मेला का आयोजन किया जाता है।

महान दलित स्वतंत्रता सेनानी उदा देवी पासी

अंग्रेजी सेना की एक बटालियन लखनऊ के सिकन्दर बाग में प्रवेश करने का प्रयास कर रही थी और उनके ऊपर कहीं से अचानक गोली चल रही थी। अंग्रेज सैनिक लगातार मारे जा रहे थे। उनके समझ में नहीं आ रही था कि उन पर हमला कहाँ से हो रहा है। एक–एक कर अंग्रेज सैनिक मारे जा रहे थे। मरने वाले सैनिकों की संख्या दो दर्जन से ज्यादा हो चुकी थी। अंग्रेज सिपाही सकते में थे। उसी समय एक अंग्रेज सैनिक की नजर एक पीपल के पेड़ पर पड़ती है। वह चिल्लाता है और गोली चलाता है। पेड़ से एक सिपाही के नीचे गिरने की आवाज आती है। अंग्रेज सैनिक और उनका सेनानायक नीचे गिरे सिपाही के पास जाते हैं। उन्हें आश्चर्य होता है। वह सैनिक एक महिला है। अंग्रेज सेनानायक अपनी टोपी उतारता है और उस मृत महिला सिपाही को सैल्यूट करता है। वह और कोई नहीं, उदा देवी पासी थीं।

जन्म

उदा देवी पासी का जन्म लखनऊ के पास एक पासी परिवार में हुआ था। उनकी जन्म तिथि का उल्लेख नहीं मिलता है। उनका विवाह मक्का पासी से हुआ था और विवाह के बाद उनका नाम बदल कर जगरानी कर दिया गया था। मक्का पासी बेगम हजरत महल की सेना में सिपाही थे। अपने पति की प्रेरणा से उदा देवी महिला सेना में शामिल होना चाहती थी। इसके लिए उसने बेगम हजरत महल से सम्पर्क किया और उनसे सिपाही के प्रशिक्षण हेतु अनुरोध किया। बेगम उदा देवी की ओर गौर से देखने लगीं। उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि यह एक बहादुर महिला है। उन्होंने उदा देवी को एक महिला बटालियन के गठन की सलाह दी थीं। इसके लिए उन्होंने उदा देवी को प्रशिक्षित किया। प्रशिक्षण के उपरांत उदा देवी ने महिला बटालियन के गठन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। वे बला की साहसी थीं।

स्वतंत्रता संग्राम 1857

भारत की धरती कभी वीरांगनाओं से खाली नहीं रही है। भारत में अंग्रेजों द्वारा एक – एक कर देशी रियासतों को ब्रिटिश हुकूमत में मिलाया जा रहा था। अंग्रेज सैनिक अपने आधुनिक हथियारों के बल पर भारतीयों को हरा रहे थे। जिन राजाओं को हराने में वे कामयाब नहीं हो रहे थे, उनके राज्य को छल से अपने कब्जे में कर रहे थे। अंग्रेजों का विरोध केवल राजा ही नहीं कर रहे थे बल्कि रानियाँ और आम जनता भी कर रही थी। ऐसी ही वीरांगनाओं में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, ईश्वरी देवी, रानी दुर्गावती आदि थीं। उदा देवी पासी उन महिलाओं के समान ही एक महान योद्धा साबित हुईं। उनके पराक्रम को अंग्रेजों ने भी सम्मान के साथ सलाम किया था।

अंग्रेजों का अवध पर हमला

दिल्ली के रास्ते में लखनऊ एक मशहूर नवाबी राज्य था। इसके शानो –शौकत की अनेक कहानियाँ मशहूर थीं। भला अंग्रेजों की नजर से यह कैसे बच सकता था। 10 जून 1857 को अंग्रेजों ने लखनऊ पर हमला कर दिया। नवाब की सेना का नेतृत्व मौलवी अहमदुल्लाह शाह कर रहे थे। उन्होंने अंग्रेज हमलावरों का मुकाबला किया। इस सेना में मक्का पासी भी थे। अंग्रेज सैनिकों का सामना करते हुए मक्का पासी शहीद हो गये। उदा पासी अपने पति के शहीद होने पर बहुत दुःखी हुई और अंग्रेजों से बदला लेने का निश्चय किया। उन्होंने अंग्रेजों का सफाया करने का निर्णय लिया। उन्होंने अपनी महिला सेना को और मजबूत बनाने के लिए दलित महिलाओं को शामिल करते हुए अपनी एक अलग ही बटालियन तैयार कर ली। इस बटालियन को दलित वीरांगना का नाम दिया गया। इसमें सभी दलित महिलायें ही सिपाही थीं।

16 नवम्बर 1857 को अंग्रेजी सेना का नेतृत्व सार्जेन्ट काल्विन कर रहा था। उसने भारतीय सेना पर हमला कर दिया। उस समय भारतीय सेना के जवान सिकन्दर बाग में रूके हुए थे। उदा देवी ने पुरूष का वेश धारण किया। अंग्रेजी सिपाहियों का सामना करने के लिए उदा देवी अपने साथ बंदूक के साथ ही गोला और बारूद लेकर एक बड़े पीपल के पेड़ पर चढ़ गयीं। उन्होंने यह निर्णय लिया कि जब तक उनके पास गोला और बारूद रहेगा, अंग्रेजी सेना को सिकन्दर बाग में प्रवेश नहीं करने देंगी। अपने अकेले के दम पर उन्होंने 32

अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया। अंग्रेजों को यह पता नहीं चल पा रहा था कि उन्हें कौन मार रहा है और कहां से गोली चल रही है। वे क्रोध से भर गये थे किन्तु अनजान हमले से काफी भयभीत भी हो गये थे। इसी बीच एक अंग्रेज सैनिक की नजर पीपल के पेड़ पर खड़ी उदा देवी पर पड़ गयी। उसने गोली चलायी और उदा देवी पेड़ से नीचे गिर गयीं। उनके मरने के बाद ही अंग्रेज सिकन्दर बाग में प्रवेश कर सके।

लंदन टाइम्स ने लिखा उदा देवी आधुनिक भारत की महान योद्धा, महिला स्वतंत्रता सेनानी जिसने 1857 के विद्रोह में 32 ब्रिटिश सैनिकों को मार गिराया। उदा देवी पासी के सम्मान में लखनऊ के सिकन्दर बाग में उनकी एक मूर्ति लगायी गयी है। उदा देवी दिनांक 16 नवम्बर 1857 को शहीद हुईं। पासी समाज के लोग हर वर्ष उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके सम्मान में कुछ पंक्तियाँ पढ़ते हैं।

कोई उनको हब्सिन कहता, कोई कहता नीच अछूत,
अबला कोई उनको बतलाये, कोई कहे उन्हें मजबूत।

उदा देवी अपने पति की मौत का बदला लेने में जिस बहादुरी का परिचय दी हैं, उसके लिए उन्हें पासी समाज नमन करता है। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी आहुति केवल पासी समाज के लिए नहीं दिया था, बल्कि वे अंग्रेजों से भारत को आजाद कराना चाहती थीं। उनका बलिदान देश के लिए था किन्तु समाज व्यवस्था के अनुसार वे अछूत समाज की थीं और उनके बलिदान को जाति के दायरे में बांध दिया गया है। यह उनके बलिदान का अपमान है।

बिहार के लेनिन बाबू जगदेव प्रसाद

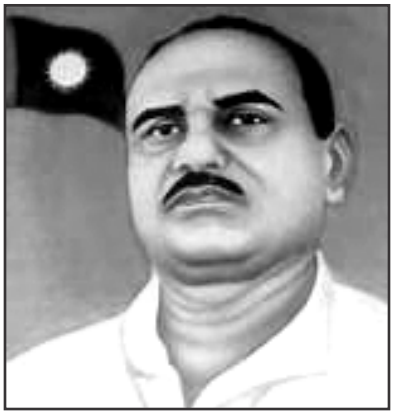

बिहार की मिट्टी की अपनी विशेषता है। इस मिट्टी ने समय – समय पर ऐसे सपूतों को जन्म दिया है, जिन्होंने भारत की दशा और दिशा दोनों को बदल के रख दिया। इस मिट्टी में बुद्ध को ज्ञान मिला, जिसके प्रकाश से आज भी विश्व प्रकाशित हो रहा है। महावीर का जन्म यहीं हुआ था, जिन्होंने तपस्या के बल पर कैवल्य प्राप्त किया था। शून्य का आष्किारक आर्यभट्ट इसी मिट्टी में खेलकर बड़े हुए थे। सम्राट अशोक की महानता इसी मिट्टी में पुष्पित और पल्लवित हुई थी। लोकतंत्र की संकल्पना बिहार की महान देन है। सम्पूर्ण क्रांति के नायक जय प्रकाश नारायण का जन्म भी बिहार में ही हुआ था, जिन्होंने कांग्रेस के आपात्काल के विरूद्ध देश के लोगों को खड़ा कर दिया और कांग्रेस को सत्ता से बेदखल कर दिया। ऐसे ही एक महान क्रांतिकारी का जन्म बिहार में हुआ था, जिन्हें उनके चाहने वाले प्यार से बाबू जगदेव प्रसाद कहते हैं। समाजवादियों द्वारा उन्हें बिहार का लेनिन कहा जाता है। उन्होंने बड़े ही साधारण शब्दों में लोगों से कहा कि यहाँ कमाता धोती वाला है और खाता टोपी वाला है। यह व्यवस्था अन्यायपूर्ण है। इसको बदलना होगा। उन्होंने लोक जनमानस को झकझोर देने

वाला नारा गढ़ा था, जिसे आप नीचे देख सकते हैंः–

दस का शासन नब्बे पर, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा;
सौ में नब्बे शोषित हैं, नब्बे भाग हमारा है।
धन–धरती और राजपाट में नब्बे भाग हमारा है।।
मानववाद की क्या पहचान, ब्राह्मण भंगी एक समान;
पुनर्जन्म और भाग्यवाद, इनसे जन्मा ब्राह्मणवाद।

जन्म एवं शिक्षा

बिहार के जहानाबाद जिला के शकुराबाद के पास एक छोटा– सा गांव कुरहारी (कुर्था) है, जिसमें दांगी जाति की उपजाति कोईरी समुदाय के लोग

निवास करते हैं। वर्तमान में कुर्था अरवल जिला का एक प्रखंड मुख्यालय है। कुर्था गांव के एक शिक्षक परिवार में बाबू जगदेव प्रसाद का जन्म 2 फरवरी 1922 को हुआ था। उनके पिता का नाम प्रयाग नारायण और माता का नाम रासकली देवी था। अपने पिता की देखरेख में ही जगदेव प्रसाद मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए जहानाबाद चले गये। उनका स्वभाव बचपन से ही विद्रोही था और वे किसी के साथ होने वाले अन्याय का प्रतिरोध करने में परिणाम की चिंता नहीं करते थे। बाबू जगदेव प्रसाद जब हाई स्कूल में साफ कपड़ा पहन कर जाते थे तो उनके सहपाठी उनका मजाक उड़ाया करते थे। एक दिन जगदेव प्रसाद ने अपना आपा खो दिया और मजाक उड़ाने वाले को पटक कर कालिख पोत दिया तथा उसकी आँखों में धूल झोंक दिया। इसके लिए बाबू जगदेव प्रसाद के शिक्षक पिता को दंड का भुगतान करना पड़ा तथा मांफी मांगनी पड़ी। इसमें बाबू जगदेव प्रसाद को भी चोट लगी थी। दूसरे दिन बिना किसी गलती के ही एक शिक्षक ने जगदेव प्रसाद को एक थप्पड़ जड़ दिया। कुछ दिनों के बाद वही शिक्षक कक्षा में सो कर खर्राटा ले रहा था। जगदेव प्रसाद ने उसके मुँह पर जोरदार थप्पड़ जड़ दिया। इस बात की शिकायत शिक्षक ने प्रधानाध्यापक से की। प्रधानाध्यापक ने कहा कि हर व्यक्ति को उसकी गलती के लिए समान सजा मिलनी चाहिए, चाहे वह शिक्षक हो या छात्र।

पंचकट्ठिया का विरोध

बिहार में जमींदारों के द्वारा एक पंचकट्ठिया प्रथा स्थापित की गयी थी, जिसके तहत प्रत्येक किसान को जमींदार की हाथी के लिए पांच कट्ठा की पैदावार देना पड़ता था। किसान इस शोषणकारी प्रथा का विरोध करने में सक्षम नहीं थे। एक दिन एक जमींदार का महावत एक खेत में हाथी चराने के लिए आया, तो जगदेव बाबू और उनके साथियों ने उसे वापस जाने को कहा। जब वह नहीं माना तो साथियों के साथ उन्होंने उसे पीट दिया। इस घटना की बहुत तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इस विरोध ने पंचकठिया प्रथा को बंद करने को मजबूर कर दिया।

ब्राह्मणवाद का विरोध

बाबू जगदेव प्रसाद जहानाबाद में अपनी हायर सेकेंडरी तक की परीक्षा पास कर उच्च शिक्षा के लिए पटना आ गये। उसी समय उनके पिता जी काफी बीमार हो गये। उनकी माता जी एक धार्मिक महिला थीं। उनका विश्वास था कि

पूजा करने से उनके पति ठीक हो जायेंगे। इसलिए उन्होंने काफी पूजा पाठ किया तथा भगवान से अपने पति का ठीक होने की प्रार्थना की। परन्तु जगदेव बाबू के पिता जी ठीक नहीं हुए और उनका देहावसान हो गया। इस घटना ने बाबू जगदेव प्रसाद को झकझोर कर रख दिया और ब्राह्मणवाद और हिन्दू देवताओं के विरोधी हो गये। उन्होंने घर के सभी देवी– देवताओं की तस्वीर को उतार कर अपने पिता की चिता के साथ ही जला दिया। हिन्दू धर्म के प्रति यह विद्रोह उनके जीवन भर बना रहा।

पत्रकारिता

घर की अनेक कठिनाइयों के बावजूद बाबू जगदेव प्रसाद ने पटना विश्वविद्यालय से स्नातक और स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्हीं दिनों उनकी मुलाकात उस समय के समाजवादी नेता चन्द्रदेव प्रसाद वर्मा से हुई। उन्होंने जगदेव बाबू को तत्कालीन राजनीतिक विचार और विचारकों से संबंध स्थापित करने का सुझाव दिया। उन्हीं के सुझाव पर जगदेव बाबू ने विभिन्न सामाजिक राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया। इसी क्रम में उनका संबंध सोशलिस्ट पार्टी से हुआ और सोशलिस्ट पार्टी का मुख पत्र **जनता** का सम्पादन करने लगे। यहां वे खुलकर दलित, पिछड़े और शोषित लोगों की समस्याओं पर लिखने लगे। सन् 1955 में वे हैदराबाद चले गये। यहाँ वह अंग्रेजी साप्ताहिक 'सिटीजन' और हिन्दी साप्ताहिक 'उदय' का सम्पादन करने लगे। उनके क्रांतिकारी विचार वाले लेख के कारण इन दोनों पत्रों के पाठकों में काफी वृद्धि हुई और इनकी संख्या लाख से ज्यादा पहुँच गयी। परन्तु इसका नकारत्मक प्रभाव यह हुआ कि कुछ लोगों द्वारा प्रकाशक को धमकी दी जाने लगी। प्रकाशक ने बाबू जगदेव प्रसाद को अपनी लेखनी की उग्रता को कम करने लिए कहा। उन्होंने प्रकाशक के अनुसार विचारों से समझौता करने के बजाए, उस काम को छोड़ना पसंद किया और पटना चले आये।

राजनीति में प्रवेश

हैदराबाद से वापस आने के बाद उन्होंने देखा कि समाजवादी आन्दोलन जोरों पर है। उस समय समाजवादी आन्दोलन के दो बड़े नेता जयप्रकाश नारायण और राममनोहर लोहिया थे। किन्तु उन दोनों के विचारों में भी समानता नहीं थी और वे दोनों अलग हो गये। बाबू जगदेव प्रसाद लोहिया के साथ हो गये। उन्होंने समाजवादी पार्टी के संरचनात्मक ढांचे में व्यापक बदलाव

किया और इससे गांव के गरीबों और स्थानीय लोगों को जोड़ने के लिए काफी काम किया। जयप्रकाश नारायण ने सक्रिय राजनीति से अपने को अलग कर लिया और भूदान आन्दोलन से अपने को जोड़ लिया। माना जाता है कि जयप्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा उदार थी। वह स्वयं काफी शर्मीला थे। उनके आग्रह पर जमींदारों ने भूदान में जमीन दान की पर अनेक गरीबों और भूमिहीनों को सभी जमीन नहीं मिली। पर्चे की जमीन पर मालिकाना हक के लिए आज तक पर्चा लेकर एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय का चक्कर लगा रहे हैं। जयप्रकाश नारायण को लगता था कि जमींदारों का हृदय बदल गया है और वे गरीबों और भूमिहीनों की सहायता करना चाहते हैं। कुछ वर्षों के बाद दाता के वंशज जमींदार अपनी जमीन का दावा करने लगे थे। कुछ–भूपति अनुसूचित जाति और जनजाति के साथ ही अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों को भूदान में मिली जमीन को वापस करने के लिए भय का माहौल पैदा करने लगे। इसके बाद ही कर्पूरी ठाकुर, विनोबा भावे को 'हवाई महात्मा' कह कर संबोधित करने लगे।

सन् 1966 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी का विलय हो गया और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। सन् 1967 में बाबू जगदेव प्रसाद संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी से विधान सभा का चुनाव लड़े और कुर्था विधान सभा से चुनाव जीतने में कामयाब रहे। बाबू जगदेव प्रसाद के अथक प्रयास से बिहार में कांग्रेस पार्टी के बिना पहली बार सरकार बनी और महामाया प्रसाद पहली बार संयुक्त विधायक दल के मुख्यमंत्री बने। इसमें कर्पूरी ठाकुर की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही थी। इस बीच बाबू जगदेव प्रसाद और राममनोहर लोहिया के बीच मतभेद पैदा हो गया। उनको लगता था कि यहाँ परिश्रम करने वाले बहुत हैं किन्तु खाने वाले कुछ ही लोग हैं। उन्होंने नारा दिया, 'कमाये धोती वाला और खाये टोपी वाला' यह नहीं चलेगा। अंत में वे 25 अगस्त 1967 को संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को छोड़ दिए और शोषित समाज दल की स्थापना की। इस पार्टी के गठन के बाद बाबू जगदेव प्रसाद ने एक ऐतिहासिक भाषण दिया और कहा कि जिस लड़ाई की बुनियाद आज मैं डाल रहा हूँ वह लम्बी और कठिन होगी। चूँकि मैं एक क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण कर कर हूँ। इसलिए आने – जाने वालों की कमी नहीं रहेगी, परन्तु इसकी धारा रूकेगी नहीं। इसमें पहली पीढ़ी के लोग मारे जायेंगे, दूसरी पीढ़ी के लोग जेल

जायेंगे तथा तीसरी पीढ़ी के लोग राज करेंगे। जीत अंततोगत्वा हमारी ही होगी। उन्होंने महसूस किया कि बिहार में एक सामाजिक सांस्कृतिक बदलाव वाले संगठन की आवश्यकता है। वे रामस्वरूप वर्मा के अर्जक संघ से जुड़ गये, जिसका गठन 1968 में किया गया था। उनका मानना था कि अर्जक संघ की विचारधारा ही ब्राह्मणवाद को समाप्त करने में सक्षम हो सकती है। सांस्कृतिक बदलाव से ही मानववादी विचारधारा कायम हो सकती है। उन्होंने नैतिक मूल्यों के प्रचार प्रसार पर अधिक जोर दिया। उन्होंने नारा दिया, '' मानववाद की क्या पहचान, ब्राह्मण, भंगी एक समान। पुनर्जन्म और भाग्यवाद इनसे जन्मा ब्राह्मणवाद।'' जगदेव प्रसाद एक महान राजनीतिक दूरदर्शी थे। वह हमेशा समाज की भलाई को महत्व देते थे। उनके विचार के केन्द्र में हमेशा मानववाद रहा। वह हर प्रकार के शोषण और अन्याय का विरोध करते थे। उनकी नजर में मानव किसी भी दल और विचारधारा से श्रेष्ठ था। इसलिए वह किसी विचार और दल से बंधे नहीं रहे। सन्1970 में बाबू जगदेव प्रसाद के समर्थन से बिहार में दारोगा प्रसाद के नेतृत्व में सरकार बनी।

बाबू जगदेव प्रसाद शोषित समाज दल के गठन के बाद राष्ट्रीय महामंत्री बनाये गये थे। महामंत्री के रूप में वह पूरे राज्य का तुफानी दौरा कर दल को मजबूत करने का हर संभव प्रयास करने लगे। वह केवल एक राजनेता नहीं, बल्कि एक दार्शनिक, एक क्रांतिकारी और एक जननायक की तरह लोगों के बीच गये। उनके क्रांतिकारी भाषण में एक नई उर्जा थी। वह नवजवानों में जोश भर देते थे। उनका जनवादी नारा लोगों को उत्साह से भर देता था।

सन् 1975 में इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार ने देश में आपात्काल लगा दिया था। कांग्रेस की तानाशाही सरकार के खिलाफ छात्र आन्दोलन शुरू हो गया था। बिहार में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में विशाल छात्र आन्दोलन शुरू हुआ। इसने पूरे देश को एक नयी दिशा प्रदान की। दिनांक 5 सितम्बर 1974 से राज्यव्यापी सत्याग्रह और आन्दोलन की योजना बनी। बाबू जगदेव प्रसाद अपने समर्थकों के साथ शोषित समाज का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ रहे थे। उनके समर्थकों के हाथ में दल का काला झण्डा था। कुर्था में ड्यूटी पर तैनात डी.एस.पी. ने सत्याग्रहियों को रोका। बाबू जगदेव प्रसाद ने इसका विरोध किया। पूर्व योजना के अनुसार, पुलिस ने सत्याग्रहियों पर हमला कर दिया। इधर बाबू जगदेव प्रसाद भी पीछे हटने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपना

भाषण जारी रखा और अंत में पुलिस ने उनपर गोली चला दी। गोली उनकी गर्दन में जा लगी और वह जमीन पर गिर पड़े। पुलिस घसीटकर उन्हे थाने में ले गयी। वह पानी – पानी चिल्लाते रहे। उन्हें पानी नहीं दिया गया। मरने के बाद पुलिस उन्हें पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल लायी जहाँ डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित किया। इस प्रकार शोषितों की आवाज सदा के लिए खामोश हो गयी।

आन्दोलन का प्रभाव

जगदेव बाबू ने बिहार में जमींदारों के खिलाफ आन्दोलन की एक मजबूत बुनियाद खड़ी कर दी। उस आन्दोलन का प्रभाव है कि आज लगातार पिछड़े समाज के नेता बिहार में सत्ता के शीर्ष पर विराजमान हो रहे हैं। जगदेव बाबू के बहनोई सतीश प्रसाद सिंह बिहार के राजनीतिक इतिहास के सबसे कम दिन के मुख्यमंत्री रहे हैं, जिन्हें शोषित समाज दल ने ही नामित किया था। जगदेव बाबू के पुत्र नागमणि और उनकी पत्नी राष्ट्रीय जनता दल की सरकार में मंत्री रहे हैं। जगदेव बाबू द्वारा तैयार की गयी बुनियाद पर ही आज सम्भवतः दलित, पिछड़े, शोषित और अल्पसंख्यक समाज के लोगों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास संभव हो पा रहा है।

पेरियार ई.वी.रामास्वामी

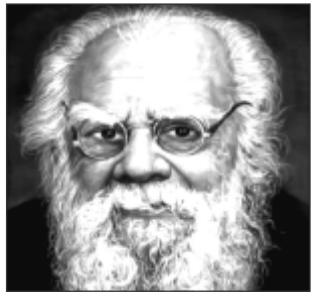

एक बालक विद्यालय में अपने शिक्षकों से बार – बार प्रश्न करता है। उसका प्रश्न भगवान के संबंध में बताये जाने वाले चमत्कार, देवताओं के अस्तित्व, जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव से संबंधित होता। उसका मन किताबी ज्ञान में लगता ही नहीं। उसके तर्क अकाट्य होते। उसके प्रश्नों का उत्तर शिक्षक नहीं दे पाते। शिक्षक बालक की प्रतिभा से प्रभावित हैं किन्तु उसकी प्रतिभा का वे नकारात्मक मूल्यांकन करते हैं। बालक को स्कूली शिक्षा समय बर्बाद करना प्रतीत होता है। मात्र तीसरी कक्षा की पढ़ाई के बाद वह विद्यालय जाना छोड़ देता है।

जन्म एवं बचपन

पेरियार रामास्वामी का जन्म ईरोड, तमिलनाडु में 17 सितम्बर 1879 को एक कन्नड़ बालाजी तमिल परम्परावादी हिन्दू परिवार में हुआ था। उस समय इरोड मद्रास प्रेसीडेन्सी के कोयम्बटूर जिला का हिस्सा था। इनका पूरा नाम इरोड वेंकट रामास्वामी नायकर था। इनका परिवार सम्पन्न था। उनके पिता वेंकटप्पा नायडू एक धनी व्यापारी थे। माता का नाम चिन्ना थायम्मल था। उनका एक बड़ा भाई कृष्णास्वामी और दो बहन कन्नमा और पोन्नुथी भी थीं। बाद में एक दूसरे के सम्मान का सूचक शब्द उनके नाम के साथ जुड़ गया। सन् 1885 में उनका नामांकन स्थानीय प्राथमिक विद्यालय में कराया गया किन्तु औपचारिक शिक्षा में उनका मन नहीं लगता। वह उनके किसी काम का नहीं प्रतीत होता था। वे अपने शिक्षकों से शिक्षा, दर्शन और धर्म पर प्रश्न करते। उनके तर्क से शिक्षक प्रभावित होते किन्तु शिक्षकों द्वारा उनके प्रश्नों का यथोचित उत्तर नहीं दिये जाने के कारण उनका मन कुण्ठा से भर जाता। वह तीसरी कक्षा के बाद औपचारिक शिक्षा से अलग हो गए और अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बटाने लगे। इस दौरान उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया। वे बचपन से ही रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियां, यथा–बाल विवाह, देवदासी प्रथा, दलितों एवं महिलाओं के शोषण आदि का

विरोध करते थें। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह पर जोर दिया। धार्मिक पुस्तकों में वर्णित परस्पर विरोधी बातों के प्रमाणिक होने पर वे अक्सर प्रश्न करते रहते थे। उन्होंने जाति व्यवस्था का कड़ा विरोध किया। रामास्वामी का 19 वर्ष की उम्र में विवाह में नागम्मई और दूसरी बार 70 वर्ष की उम्र मनियाम्मई से हुआ। उनकी दूसरी पत्नी आजीवन उनकी समाज सेवा के कार्य में सहभागी रहीं। उन्होंने अपने विचार के माध्यम से द्रविड़ कड़गम की पैरोकारी किया। सन् 1929 में उन्होंने अपने नाम के टाइटिल नायकर शब्द को प्रथम प्रांतीय स्वाभिमान सम्मेलन, चेन्गालपट्टू में हटाने की घोषणा की। उनको एक बेटी हुई थी जो पाँच वर्ष की अवस्था में ही काल कवलित हो गयी। वे कन्नड़ और तमिल बोलते थे।

काशी की धार्मिक यात्रा

सन् 1904 में पेरियार रामास्वामी नायकर ने भगवान विश्वनाथ के दर्शन करने हेतु काशी की धार्मिक यात्रा की। उन्हें यह बताया गया था कि काशी हिन्दुओं की एक पवित्र नगरी है। यहाँ आने के बाद उन्होंने गंगा में तैरती लाशों को देखा और उन्हें यह अमानवीय प्रतीत हुआ। उन्होंने काशी में ब्राह्मणवादियों द्वारा किए जाने वाले शोषण को नजदिक से देखा और अनुभव किया। काशी में उन्होंने जो कुछ देखा, उन्हें अनैतिक लगा। विश्वनाथ मंदिर के अहाते में मुफ्त भोजन का वितरण हो रहा था। रामास्वामी को भी भूख लगी थी। वह निःशुल्क भोजन की पंक्ति में खड़े हो गये। वह भोजन प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे किन्तु यह केवल ब्राह्मणों के खाने के लिए था। गैर– ब्राह्मण होने के कारण रामास्वामी नायकर को धक्के मार कर भगा दिया गया। इस अपमान ने उनके जीवन को बदल दिया और वह आजीवन हिन्दू धर्म के रूढ़िवादी व्यवस्था के विरोधी हो गये। उन्होंने आजीवन किसी धर्म का अनुसरण नहीं किया और नास्तिक बनकर रहे। काशी आने के पूर्व वह आस्तिक थे और काशी आने के बाद वह नास्तिक होकर वापस मद्रास लौटे।

कांग्रेस पार्टी की सदस्यता

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की पहल पर रामास्वामी नायकर 1919 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के सदस्य बन गये। उन्होंने अपना व्यवसाय छोड़

दिया और लोक सेवक के पद से भी इस्तीफा दे दिया। उन्होंने इरोड नगरपालिका के अध्यक्ष के पद पर रहते हुए पूरे मनोयोग से खादी का प्रयोग करने हेतु लोगों को जागृत करने, शराब की दुकानों का विरोध करने और विदेशी वस्त्रों की बिक्री पर रोक लगाने, छुआछूत को मिटाने के आन्दोलन चलाये। इरोड में शराब की दुकानों को बंद कराने के अपराध में कोर्ट ने 1921 में उन्हें जेल में रहने की सजा सुनाई। उस समय उनकी पत्नी और बहन आन्दोलन से जुड़ गयीं और आन्दोलन का नेतृत्व किया। अंत में प्रशासन ने उनके साथ समझौता करने हेतु उन्हें आमंत्रित किया। कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें एक बार पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। सन् 1922 में त्रिचूर में हुए कांग्रेस के सम्मेलन में रामास्वामी नायकर को कांग्रेस कमिटि के सदस्यों द्वारा मद्रास प्रेसीडेन्सी का अध्यक्ष चुन लिया गया। उन्होंने सरकारी नौकरियों और शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण की मांग की। कांग्रेस में भेदभाव और मतभिन्नता के कारण उन्होंने 1925 में कांग्रेस पार्टी से अपना त्याग पत्र दे दिया।

वैकोम सत्याग्रह

देश के अन्य हिस्सों की तरह केरल में जातिवाद चरम पर था। निम्न जाति या अछूत कही जाने वाली जातियों को मंदिर में पूजा का अधिकार नहीं था। उनका मंदिर में प्रवेश वर्जित था। वे मंदिर जाने वाली सड़कों पर नहीं चल सकते थे। सन् 1923 के काकीनाड़ा में कांग्रेस पार्टी की एक बैठक का आयोजन किया गया था, जिसमें टी.के.माधवन ने केरल में दलितों के साथ होने वाले भेदभाव और छुआछूत से संबंधित एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस बैठक की अध्यक्षता के.केलप्पंन कर रहे थे। फरवरी 1924 में यह निर्णय लिया गया कि केरलापर्यटनम प्रारम्भ किया जाए, जिसका उद्देश्य मंदिर में प्रवेश पाना और सार्वजनिक सड़कों पर बिना जाति–पाति का भेदभाव किए सभी को चलने का अधिकार हो। उसी सत्र में यह भी निर्णय लिया गया कि छुआछूत के विरूद्ध एक आन्दोलन चलाया जाए।

केरल के वैकोम में छुआछूत के कड़े नियम थे। किसी भी अछूत, दलित और हरिजन को किसी भी मंदिर के आस–पास की सड़क पर चलना वर्जित था। अतः आन्दोलन के लिए उपयुक्त स्थान वैकोम को माना गया और 1924 में केरल के कांग्रेसी नेताओं के अनुरोध पर पेरियार ने वैकोम आन्दोलन का नेतृत्व का निर्णय लिया। वे 14 अप्रैल को अपनी पत्नी के साथ वैकोम पहुँच गए। उन्हें शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया। इस आन्दोलन का गांधीजी ने विरोध किया किन्तु रामास्वामी और उनके हजारों अनुयायियों ने आन्दोलन को जारी रखा। उनके अनुयायियों ने उन्हें 'वैकोम वीरन' की उपाधि दी। इस आन्दोलन को पूरे देश से समर्थन मिला। अकालियों ने सत्याग्रहियों को भोजन कराने का कार्य किया। इसमें मुसलमान और ईसाइयों ने भी सत्याग्रहियों का साथ दिया। गांधी हतप्रभ थे। उनका मानना था कि यह हिन्दुओं के बीच का आपसी मामला है। उनके कहने पर आन्दोलन कुछ समय के लिए रूका किन्तु बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। आन्दोलन पुनः शुरू हो गया। के.पी.केशव मेनन और टी.के. माधवन को गिरफ्तार कर लिया गया। उनके सहयोग के लिए रामास्वामी मद्रास से केरल आये। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। 1 अक्टूबर 1924 को 25000 लोगों के हस्ताक्षर वाला एक आवेदन मन्नाथ पद्भनाभन नायर के नेतृत्व में त्रावणकोर की महारानी सेतुलक्ष्मीबाई को सौंपा गया। इस आवेदन में सभी को मंदिर प्रवेश और सार्वजनिक सड़कों पर चलने के अधिकार हेतु अनुरोध किया गया था।

आत्मसम्मान आन्दोलन

रामास्वामी और उनके अनुयायी असमानता, मैला ढोने की प्रथा और छुआछूत को मिटाने के लिए सरकार पर लगातार दबाव बना रहे थे जबकि अन्य लोग केवल राजनीतिक आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे। आत्मसम्मान आन्दोलन गैर ब्राह्मणों और द्रविड़ों के अतीत को गौरवशाली होने का प्रचार – प्रसार पर केन्द्रित था। सन् 1925 के बाद पेरियार रामास्वामी ने आत्मसम्मान आन्दोलन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। आन्दोलन के प्रचार–प्रसार के लिए उन्होंने एक तमिल साप्ताहिकी कुडी अरासु (1925) और एक अंग्रेजी जर्नल रिवोल्ट (1928) शुरू की थी। इस आन्दोलन के संबंध में 1952 में कहा गया कि यह राजनीतिक शिक्षा, लोगों को आजादी के साथ सम्मान के साथ जीने,

अव्यावहारिक रीति रिवाज,व्यर्थ के सामाजिक समारोह और चमत्कार में विश्वास से गुलामों को आजादी का ज्ञान देने का प्रमुख माध्यम बन गया था। अनजाने में किसी जाति, धर्म, समुदाय में जन्म लेने के कारण वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का दंश झेल रहे लोगों को समान अधिकार दिलाना, छुआछूत को समाप्त करना, भाईचारा के साथ रहने का पाठ पढ़ाना, छोटे और बड़े का भेद मिटाना, महिलाओं को समान अधिकार दिलाना, बाल विवाह को रोकना, विधिसम्मत विवाह को बढ़ावा देना, प्रेम विवाह को बढ़ावा देना, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय और अन्तर्धार्मिक विवाह को प्रोत्साहन और सिविल कानून के तहत विवाह का निबंधन संबंधी आन्दोलन में आत्मसम्मान आन्दोलन की बड़ी भूमिका रही। इस आन्दोलन ने अनाथों और विधवाओं के लिए गृह की स्थापना और संचालन के साथ ही शैक्षणिक संस्थाओं के विकास हेतु कार्य किया। इस आन्दोलन का तेजी से विस्तार होने लगा और रामास्वामी ने अपना पूरा जीवन इस आन्दोलन को समर्पित कर दिया। इस आन्दोलन को जस्टिस पार्टी का समर्थन मिला। उन्होंने इरोड में आत्मसम्मान स्कूल की स्थापना की थी। यह आन्दोलन एक सामाजिक सुधार आन्दोलन नहीं था बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति था, जिसका उद्देश्य एक नये समाज की रचना करना था।

हिन्दी का विरोध

मद्रास प्रेसीडेन्सी का अंतरिम चुनाव सन् 1937 में हुआ और सी. राजगोपालाचारी मुख्यमंत्री बने। हिन्दी मुख्यतः उत्तर भारतीयों की भाषा है किन्तु कांग्रेस को ऐसा लगता था कि हिन्दी पूरे देश को जोड़ने में सक्षम है। अतः राजगोपालाचारी ने स्कूलों में हिन्दी भाषा की पढ़ाई को अनिवार्य कर दिया। इससे तमिलनाडु एवं अन्य दक्षिणी राज्यों में हिन्दी के विरोध का सिलसिला शुरू हो गया। तमिल नेशनलिस्ट और जस्टिस पार्टी सर ए.टी.पनीरसेलवन और रामास्वामी के द्वारा हिन्दी विरोधी आन्दोलन को संगठित कर आन्दोलन किया गया। इस विरोध को दबाने के लिए 1938 में अनेक लोगों को गिरफ्तार किया गया। उसी समय तमिलनाडु तमिलों का नारा पेरियार रामास्वामी नायकर ने दिया। उनका मानना था कि हिन्दी आर्यों की एक खतरनाक भाषा है और यह द्रविड़ों की संस्कृति को क्षति पहुँचायेगा। उन्होंने कहा कि हिन्दी के कारण हिन्दी बोलने वाले उत्तर भारतीयों के तमिल सहायक बनकर रह जायेंगे। उनकी इस

भविष्यवाणी को बाद के दिनों में महसूस किया गया और तमिलनाडु के लोग अपने दलीय भावना से ऊपर उठकर 1948, 1952 और 1965 में हिन्दी का विरोध करते रहे।

द्रविड़ कड़गम

गैर– ब्राह्मणों का सामाजिक उत्थान एवं ब्राह्मण समुदाय की आर्थिक,सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का विरोध करने के उद्देश्य से सन् 1916 में साउथ इंडियन लिबरेशन एशोसियेशन की स्थापना की गयी थी। समय के साथ ही इसमें बदलाव हुआ और इसे जस्टिस पार्टी में बदल दिया गया। आम लोगों का समर्थन हासिल करने के लिए गैर – ब्राह्मण राजनेताओं ने गैर – ब्राह्मण जातियों के बीच समानता के विचार का प्रसार– प्रचार किया। जब जस्टिस पार्टी कमजोर पड़ गयी तो इसका नेतृत्व पेरियार रामास्वामी नायकर ने सम्भाल लिया और हिन्दी विरोध के आन्दोलन के माध्यम से जस्टिस पार्टी को पुनर्जीवित किया। बाद में इस पार्टी का नाम बदलकर पेरियार ने द्रविड़ कड़गम कर दिया। इसका प्रभाव शहरी समाज और छात्रों पर व्यापक तौर पर पड़ा। ग्रामीण क्षेत्रों में इस पार्टी की जड़ों को मजबूत करने के लिए रामास्वामी ने हिन्दी विरोध, ब्राह्मणी कर्मकांड एवं आडम्बर का विरोध किया। इस पार्टी ने दलितों में छुआछूत के उन्मूलन के लिए संघर्ष किया। उन्होंने अपना पूरा ध्यान महिला मुक्ति, महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह आदि जैसे सामाजिक सरोकार के विषयों पर केन्द्रित किया। इससे द्रविड़ कड़गम का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ और पार्टी मजबूत होकर उभरी। बाद में अन्ना दुरैय ने इसे विभाजित कर डी.एम.के. बनाया।

विदेशों की यात्रा

वर्ष 1929 और 1932 के बीच साम्यवाद का अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार हुआ और दुनिया भर में मंदी छा गयी थी। भारतीय राजनीतिक दल, आन्दोलन और नेतृत्व भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अतः आत्मसम्मान आन्दोलन भी वाम दर्शन एवं संस्थाओं के प्रभाव में आ गया। रामास्वामी आत्मसम्मान आन्दोलन की स्थापना के बाद से ही उसे राजनीतिक और सामाजिक तौर पर मजबूत करने हेतु लगातार प्रयासरत् थे। इसके लिए उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अनेक देशों की

राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति और इतिहास का अध्ययन किया। वे मलाया की यात्रा पर गये। पेनांग में 50000 तमिल मलेशियाई लोगों ने उनका स्वागत किया। इपोह में उन्होंने एक तमिल कांफ्रेंस का उद्घाटन किया। उसके बाद वे सिंगापुर गये। दिसम्बर 1931 में वे यूरोप चले गये। यूरोप की यात्रा में उनके साथ एस. रामानाथन भी गये थे और उन लोगों ने वहाँ की राजनीतिक प्रक्रिया, सामाजिक आन्दोलन, जीवन जीने की पद्धति, आर्थिक विकास, प्रशासन और लोक उपक्रमों की संरचना आदि को समझने का प्रयास किया। इसके बाद वे इजिप्ट, ग्रीस, तुर्की, सोवियत संघ,जर्मनी, इंग्लैंड, स्पेन, फ्रांस और पुर्तगाल गये जहां तीन माह तक रहे। लौटते समय वे सिलोन में रूके थे और नवम्बर 1932 में भारत लौटे। इन देशों की यात्रा से रामास्वामी के आत्मसम्मान आन्दोलन हेतु सामाजिक और राजनीतिक विचारों में एक नयापन आया। साम्यवादियों ने उनसे भारत की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए साम्यवाद के प्रचार–प्रसार को महत्वपूर्ण बताया। यद्यपि रामास्वामी आर्थिक क्षेत्र में साम्यवादियों के काफी करीब थे किन्तु वह निजी सम्पति को समाप्त करने के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने साम्यवादियों के साथ मिलकर भारत में सामाजिक – राजनीतिक योजनाओं के साथ समाजवादी विचार धारा के संयोजन पर काम करना शुरू किया। इससे तमिलनाडु में आत्मसम्मान आन्दोलन को एक नया मुकाम हासिल हुआ। सन् 1956 में कांग्रेस के तामिलनाडु प्रदेश अध्यक्ष के चेतावनी के बाद भी रामास्वामी ने हिन्दू देवता राम की तस्वीर को सार्वजनिक रूप से जलाने का निर्णय लिया। उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। उन्होंने 1958 में बैंगलोर में आयोजित अखिल भारतीय कार्यालयी भाषा कांफ्रेंस में भाग लिया जिसमें उन्होंने हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी को संघीय कार्यालयी भाषा बनाये जाने पर जोर दिया। पाँच साल बाद जातिवाद को समाप्त करने के लिए उत्तर भारत की यात्रा की। 19 दिसम्बर 1973 को उनकी अंतिम मिटिंग थियागरायानगर, चेन्नई में आयोजित हुई थी जिसमें उन्होंने सामाजिक समानता और गरिमापूर्ण जीवन के लिए आन्दोलन का आवाह्न किया। रामास्वामी नायकर का 94 वर्ष की उम्र में 24 दिसम्बर 1973 को परिनिर्वाण हो गया।

रामास्वामी नायकर का पूर्ण विश्वास तर्कवाद में था। उन्होंने अपने तर्कों से प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया। वह ब्राह्मणवाद के घोर

विरोधी थे। उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त आडम्बर और भेदभाव के खिलाफ आत्मसम्मान आन्दोलन चलाया। वह आजीवन जातिवाद को समाप्त करने हेतु संघर्षरत रहे। उन्होंने दक्षिण भारत में हिन्दी को शिक्षण की अनिवार्य भाषा बनाये जाने का विरोध किया और द्रविड़नाडु की मांग की। उन्होंने महिलाओं की समानता की पैरोकारी की और सती प्रथा, बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने हेतु समाज को झकझोरा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने उन्हें भारत का सुकरात कहा है। 'सच्ची रामायण' पेरियार रामास्वामी नायकर की एक महत्वपूर्ण कृति है जिसमें उन्होंने लगभग 140 प्रचलित रामायण की पुस्तकों के आधार पर अपने तर्क से राम को एक काल्पनिक कहानी का पात्र बताया है। इस पुस्तक को बंद कराने के लिए इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक वाद लाया गया था जिसकी पैरोकारी ललई सिंह यादव ने किया था। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने ललई सिंह के पक्ष में फैसला सुनाया और रामायण को एक काल्पनिक महाकाव्य करार दिया गया। बाद में इसकी पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी की गयी।

गुदड़ी के लाल कर्पूरी ठाकुर

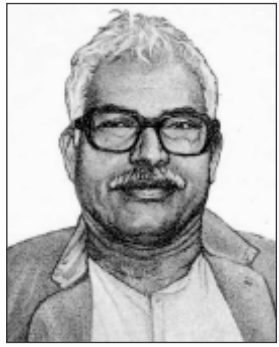

जननायक कर्पूरी ठाकुर एक समाजवादी नेता थे। उनकी कथनी और करनी में कहीं अंतर नहीं था। वह बिहार जैसे राज्य के दो बार मुख्यमंत्री रहे किन्तु उनके देहावसान के समय उनका अपना घर नहीं था। चलने के लिए उन्हें चौधरी देवी लाल ने एक जीप दिया था, जिस पर वह कभी – कभार ही सवारी करते थे। ज्यादातर वह रिक्शा से चलते थे। वह समाजवाद लाने के लिए संघर्ष कर रहे थे और सवर्ण समाज उपहास उड़ा रहा था। सन् 1977 में मुख्यमंत्री बनने के बाद उन्होंने मुंगेरीलाल कमीशन का गठन किया जिसकी अनुशंसा पर राज्य की नौकरियों में आरक्षण लागू हुआ था। इस आरक्षण के कारण सवर्णों ने उन्हें गाली तक दी। उनकी राजनीतिक योग्यता पर सवाल खड़ा करते हुए सवर्णों ने नारा दिया, ''कर्पूरी कर पूरा छोड़ो गद्दी और पकड़ो छुरा।'' वास्तव में लोकतंत्र की व्यवस्था में संख्या के लिहाज से मात्र दो प्रतिशत की आबादी वाली जाति से आने वाले कर्पूरी ठाकुर का बिहार जैसे बड़े जातिवादी राज्य का मुख्यमंत्री होना किसी चमत्कार से कम नहीं है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि श्री कर्पूरी ठाकुर ने एक राजनीतिक विसात बिछाई, उसी पर श्री लालू प्रसाद यादव और श्री नीतीश कुमार बिहार के मुख्यमंत्री बन सके।

जन्म एवं परिवार

भारत में ब्रिटिश शासन था। देश और प्रदेश की स्थिति बहुत ही खराब थी। बिहार के समस्तीपुर जिला के पितौझियां गाँव के एक गरीब नाई परिवार में कर्पूरी ठाकुर का जन्म 24 जनवरी 1924 को हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री गोकुल ठाकुर तथा माताजी का नाम श्रीमती रामदुलारी देवी था। उनके पिताजी ग्रामीण समाज की व्यवस्था के अनुसार अपना परम्परागत पेशा नाई का काम करते थे।

शिक्षा

कर्पूरी ठाकुर की प्रारम्भिक शिक्षा हेतु गाँव के ही पाठशाला में 6 वर्ष की आयु में नामांकन कराया गया। वे सन् 1940 में मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और आगे की पढ़ाई के लिए दरभंगा के चक्रधारी मिथिला महाविद्यालय में अपना नामांकन कराए, जो उनके गांव से करीब 50 किलोमीटर

दूर था। वह अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए रोज 50 किलोमीटर की दूरी तय करते थे। चक्रधारी मिथिला महाविद्यालय से इंटरमीडियेट की शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत इसी महाविद्यालय में ग्रेजुएट की पढ़ाई कर रहे थे। इसी समय वह छात्र आन्दोलन से जुड़ गये और ऑल इंडिया स्टुडेंट फेडरेशन के सक्रिय सदस्य हो गये। 'भारत छोड़ों' आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्होंने ग्रेजुएशन की शिक्षा पूरी नहीं कर पाए।

स्वतंत्रता आन्दोलन

महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में भारत छोड़ो आन्दोलन चल रहा था। सन् 1942 में उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी और जय प्रकाश नारायण द्वारा गठित आजाद दस्ता के सक्रिय सदस्य बन गये। 23 अक्टूबर 1943 को रात के करीब दो बजे उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दरभंगा जेल में डाल दिया गया। उन्होंने लगभग 26 महीने जेल में बिताये। वह एक महान स्वतंत्रता सेनानी थे।

शिक्षक

कर्पूरी ठाकुर को आर्थिक परेशानी थी। इधर वह आजाद दस्ता के सदस्य बन गये थे। उन्हें परिवार की परेशानी का ज्ञान था। परिवार की स्थिति को देखते हुए उन्होंने गाँव के ही मध्य विद्यालय में 30रू0 महीने पर प्रधानाध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। वह दिन में प्रधानाध्यापक का कार्य करते थे और रात में आजाद दस्ता की जिम्मेवारी का निर्वहन करते थे। वह एक लोक प्रिय शिक्षक थे और उन्हें छात्रों द्वारा काफी सम्मान मिलता था।

कुशल वक्ता

कर्पूरी ठाकुर एक कुशल वक्ता थे। आजादी के समय वे पटना के कृष्णा टॉकीज में भाषण दे रहे थे। अंग्रेजी राज पर उनका गुस्सा परवान चढ़ गया और उन्होंने कहा, '' हमारे देश की आबादी इतनी अधिक है कि केवल थूक फेंक देने से अंग्रेजी राज बह जायेगा।'' इस भाषण के कारण उन्हें दण्ड दिया गया था। वह सदैव देश के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करते देखे जाते थे। उन्होंने कहा कि संसद का विशेषाधिकार कायम रहना चाहिए। उसे अक्षुण रहना चाहिए परन्तु जनता के अधिकार को कुचलना नहीं चाहिए। यदि जनता के अधिकारों को कुचला जायेगा तो जनता आज नही तो कल अवश्य संसद के विशेषाधिकारों को चुनौती देगी। उनका एक प्रसिद्ध नारा था, '' अधिकार चाहो तो लड़ना सीखो, पग – पग पर अड़ना सीखो, जीना है तो मरना सीखो।''

शिक्षक से विधायक

सन् 1952 में वह समस्तीपुर के ताजपुर विधान सभा क्षेत्र से सोशलिस्ट पार्टी के चुनाव चिन्ह पर पहली बार चुनाव लड़े और जीत हासिल की। अब वह शिक्षक से विधान सभा के सदस्य बन गये थे। डाक एवं तार विभाग के कर्मचारियों द्वारा 1960 में आम हड़ताल की घोषणा की गई थी। उस हड़ताल का नेतृत्व कर्पुरी ठाकुर ने किया। इसके कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। सन् 1970 में टेल्कों के मजदूरों की समस्या को लेकर उन्होंने 28 दिन का ऐतिहासिक आमरण अनशन किया था। पहली बार चुनाव जीतने के बाद कर्पुरी ठाकुर कभी चुनाव नहीं हारे।

उप–मुख्यमंत्री –सह– शिक्षा मंत्री

सन् 1967 में श्री महामाया प्रसाद की कैबिनेट में कर्पूरी ठाकुर को बिहार का उप–मुख्यमंत्री– सह – शिक्षा मंत्री बनाया गया। शिक्षक रहते हुए उन्होंने महसूस किया था कि गरीबों के बच्चे मैट्रिक में आकर पढ़ाई क्यों छोड़ देते हैं? उनका मानना था कि अंग्रेजी की अनिवार्यता के कारण दलितों एवं पिछड़ों के बच्चों को बीच में ही पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती है। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया। गरीब बच्चों के विद्यालय की फीस को माफ कर दिया गया। इससे आम लोगों की पहुँच शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ी। परन्तु इसके लिए उनकी बड़ी आलोचना की गयी।

मुख्यमंत्री

कर्पूरी ठाकुर 1970 में पहली बार मुख्यमंत्री बने। यह सरकार मात्र 163 दिनों तक चली। परन्तु इस सरकार ने कई ऐतिहासिक फैसले लिए। सरकार ने 8वीं तक की शिक्षा को मुफ्त कर दिया। उर्दू को राजकीय भाषा का दर्जा दिया गया। सरकार ने पांच एकड़ तक की जमीन पर लगान माफ कर दी। 1977 में कर्पुरी ठाकुर की दूसरी बार सरकार बनी। उन्होंने उस समय के दिग्गज नेता श्री सत्येन्द्र नारायण सिन्हा से नेता पद का चुनाव जीत लिया। वास्तव में यह जीत उनके राजनीतिक गुरू जय प्रकाशनारयण और राममनोहर लोहिया और साथी रामसेवक यादव और मधुलिमये की थी। इसमें उनके राजनीतिक शिष्यों रामविलास पासवान, लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार एवं सुशील कुमार मोदी का परिश्रम भी काम आया। उन्होंने मैट्रिक तक मुफ्त पढ़ाई की घोषणा की। गरीबों की बेरोजगारी को कर्पूरी ठाकुर ने बड़ा ही नजदीक से देखा था। उन्होंने

युवाओं को रोजगार देने की अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हुए कैम्प लगाकर 6000 युवा इंजिनियरों को नियुक्ति पत्र दे दिया। इतनी बड़ी नियुक्ति की प्रक्रिया संभवतः आज तक नहीं हुई है।

आम तौर पर बैक डोर से पदों को भरने का रिवाज था। इसके लिए पहले अस्थायी नियुक्ति कर ली जाती थी और बाद में उसे स्थायी कर दिया जाता था। सरकारी व्यवस्था ऐसे ही चलती थी। 1978 में कर्पूरी ठाकुर ने इसे नजदीक से महसूस किया और उन्होंने सिंचाई विभाग में 17000 पदों को भरने के लिए आवेदन मंगवाया। इसे भरा जाता, इसके पहले ही उनकी सरकार गिर गयी। कई लोग सरकार गिरने का संबंध खुली भर्ती से खाली पदो ंके भरने हेतु आवेदन मांगे जाने से जोड़ते हैं क्योंकि यह सवर्णों को मंजूर नहीं था।

सामाजिक परिवर्तन की बुनियाद खड़ा करना

पूर्व विधान पार्षद प्रेम कुमार मणि ने अपने एक लेख में लिखा है कि उस दौर में समाज में उन्हें कहीं अन्तर्जातीय विवाह की खबर मिलती तो वे वहां पहुँच जाते थे। वह समाज में बदलाव चाहते थे। बिहार में जो आज दबे पिछड़ों को सत्ता में हिस्सेदारी मिली हुई है, उसकी भूमिका कर्पुरी ठाकुर ने बनाई थी। उन्होंने अपने छोटे – छोटे प्रयासों से वंचित समाज को जोड़ने का कार्य किया। बिहार के मुख्यमंत्री सचिवालय में लिफ्ट होने के बावजूद उसका इस्तेमाल चतुर्थवर्गीय कर्मचारी नहीं कर सकते थे। कर्पुरी ठाकुर ने महसूस किया कि जिनको बार – बार छत पर जाना पड़ता है, उन्हें लिफ्ट की सुविधा नहीं देना, गलत है। उन्होंने चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों के लिए लिफ्ट का इस्तेमाल करना सुनिश्चित कराया। उन्होंने राज्य सरकार के कर्मचारियों को समान वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर वेतन लागू किया।

बिहार में नाई की आबादी मात्र दो प्रतिशत् है। उस समाज से विधायक होना ही बड़ी बात है किन्तु कर्पुरी ठाकुर बिहार के मुख्यमंत्री हो गये। यह बात लोगों को भ्रम में डाल देता है। आखिर उनकी राजनीति की सफलता का रहस्य क्या था? इसका एक उत्तर नहीं हो सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उनके दिल में गरीबों और पिछड़ी जातियों के प्रति प्रेम और उनकी समस्याओं की समझ ही उनकी सफलता का राज है। उनकी स्वयं की पहचान अति पिछड़ी जाति के नेता के रूप में होती थी। इसमें करीब 100 से ज्यादा जातियाँ थीं और उनकी कुल आबादी लगभग 29 प्रतिशत होती है। उन्होंने इन छोटी आबादी वाली जातियों को संगठित कर वोट बैंक में बदलने का प्रयास अपने कार्यों के

आधार पर किया। उनके इस वोट आधार पर ही 2005 में श्री नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री बनने का अवसर मिला।

कर्पूरी फार्मुला

बिहार की राजनीति में आरक्षण के कर्पूरी फार्मुला का बार – बार उल्लेख किया जाता है। वास्तव में कर्पूरी ठाकुर ने अपना आधार मजबूत करने के लिए संख्या को आधार बनाया। इसके लिए उन्होंने एक फार्मुला दिया, जिसे आरक्षण का 'कर्पूरी फार्मुला' कहा जाता है। दर असल 23 दिसम्बर 1970 को उन्होंने एक कमेटी का गठन किया था, जिसे मूंगेरी लाल कमेटी के नाम से जाना जाता है। जब वह दोबारा मुख्यमंत्री बने तो 1978 में अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण दिए। कर्पुरी ठाकुर का मानना था कि बिहार की अन्य पिछड़ी जातियों में से कुछ ज्यादा प्रभावशाली हैं और कुछ जातियों की स्थिति बहुत ही खराब है। इसलिए उन्होंने अन्य पिछड़ी जातियों की दो सूची बनायी, जिसे एनेक्शर 1 और एनेक्सर 2 के रूप में जाना जाता है। इसे अत्यंत पिछडी जाति और पिछड़ी जाति के नाम से भी जाना जाता है। कर्पूरी ठाकुर ने तीन प्रतिशत महिला, तीन प्रतिशत आर्थिक रूप से गरीब सवर्ण, 12 प्रतिशत अतिपिछड़ी जातियाँ और 8 प्रतिशत पिछड़ी जातियों को आरक्षण दिया। इस प्रकार बिहार अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने वाला देश का पहला राज्य बन गया। उन्होंने सवर्ण जातियों के लिए तीन प्रतिशत आरक्षण दिया और पिछड़ी जातियों को 26 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की। उन्होंने महिलाओं के लिए पहली बार तीन प्रतिशत आरक्षण देने का कार्य किया।

सच्चे समाजवादी

आज देश में श्री लालू प्रसाद यादव, मुलायम सिंह यादव, नीतीश कुमार, शरद यादव, राम विलास पासवान जैसे सैकड़ों नेता अपने को समाजवादी कहते हैं। सफल राजनीति में रहने के बाद भी कर्पूरी जी का अपना मकान नहीं था। एक वर्णन मिलता है कि जब वह मुख्यमंत्री थे, उनके रिश्ते के बहनोई उनके पास नौकरी के लिए आये और सिफारिश से नौकरी लगवाने के लिए कहा। कर्पूरी ठाकुर उनकी बात सुनकर कुछ देर खामोश रहे और उसके बाद अपनी जेब से 50 रूपया निकाल कर उन्हें देकर बोले, '' जाईये, उस्तरा आदि खरीद लीजिए और अपना पुस्तैनी धंधा आरम्भ कीजिए।'' एक बार कुछ सामंतों ने उनके पिताजी को अपमानित कर दिया था। यह खबर फैल गयी। जिलाधिकारी इसके लिए कार्रवाई करने पहुँच गये। यह बात जब कर्पुरी ठाकुर के पास पहुँची

तो उन्होंने जिलाधिकारी को कार्रवाई करने से रोक दिया। उनका कहना था कि दबे और पिछड़ों का अपमान हर गांव में हो रहा है, सभी का बेटा मुख्यमंत्री नहीं है, जिसके लिए जिलाधिकारी कार्रवाई करेंगे। अपने बेटा श्री रामनाथ को कर्पूरी ठाकुर बराबर पत्र लिखते थे। उस पत्र में लिखा होता था, '' तुम इससे प्रभावित नहीं होना। कोई लोभ लालच देगा, तो उस लोभ में मत आना, मेरी बदनामी होगी।'' श्री कर्पूरी ठाकुर के संबंध में श्री हेमवती नंदन बहुगुणा ने अपने संस्मरण में लिखा है, '' कर्पूरी ठाकुर की आर्थिक तंगी को देखकर देवी लाल ने अपने एक हरियाणवी मित्र को कहा था कि कर्पूरी जी कभी आपसे पाँच–दस हजार रुपए माँगे तो आप उन्हें दे देना। वह मेरे ऊपर आपका कर्ज रहेगा। बाद में देवीलाल ने अपने मित्र से कई बार पूछा– भई कर्पूरीजी ने कुछ माँगा। हर बार मित्र का जबाब होता, नहीं साहब, वह तो कुछ माँगते ही नहीं हैं। प्रेम कुमार मणि ने रामनाथ के हवाले से लिखा है, ''जननायक 1952 में विधायक बन गए थे। एक प्रतिनिधिमंडल में आस्ट्रिया जाना था। उनके पास कोट ही नहीं था। एक दोस्त से मांगना पड़ा। वहाँ से यूगोस्लाविया भी गए तो मार्शल टीटो ने देखा कि उनका कोट फटा हुआ है और उन्हें एक कोट भेंट की।

अस्सी के दशक में कर्पूरी ठाकुर विधान सभा में प्रतिपक्ष के नेता थे। लंच के लिए घर जाने के लिए उन्होंने अपने दल के एक विधायक के पास चिट्टी भिजवा कर उनकी जीप मांगी। विधायक ने जीप देने से मना कर दिया। उस विधायक ने कहा कि मेरी जीप में तेल नहीं है। कर्पूरीजी आप दो बार मुख्यमंत्री रहे, कार क्यों नहीं खरीदते? कर्पूरी ठाकुर रिक्शा से ही चलते थे। वे मानते थे कि अपनी जायज आमदनी से कार से नहीं चला जा सकता। उनका जीवन बेदाग रहा। कहा जाता है कि उनके निधन के बाद हेमवती नंदन बहुगुणा उनके गाँव गए थे। वह उनका घर देखकर रोने लगे थे। सत्तर के दशक में सरकार विधायकों को सस्ते दर पर आवास हेतु जमीन दे रही थी। कर्पूरी ठाकुर से जमीन लेने को कहा गया। कुछ विधायकों ने व्यंग्य किया कि आप नहीं रहेंगे तो आपका बाल बच्चा कहाँ रहेंगे? कर्पूरी ठाकुर ने तपाक से कहा कि वह अपने गाँव में रहेंगे। जब वह मुख्यमंत्री थे, अपनी बेठी की शादी के लिए राँची लड़का देखने जाना था। वे सरकारी गाड़ी के बजाए, टैक्सी से गये थे।

चरखा समिति में जयप्रकाश नारायण रहते थे। वहाँ देश भर की जनता पार्टी के नेता आये थे। उनमें चन्द्रशेखर और नानाजी देशमुख आदि प्रमुख थे। कर्पूरी ठाकुर का कुर्ता, धोती और चप्पल देखकर एक नेताजी ने व्यंग्य में कहा

कि एक मुख्यमंत्री के ठीक से गुजारे के लिए कितना वेतन मिलना चाहिए? इसका आशय समझकर सभी हंसने लगे। चन्द्रशेखर ने अपना कुर्ता फाड़ दिया और उसे फैलाकर कहा कि कर्पूरी ठाकुर के कुर्ता फंड में दान दीजिये। कुछ सौ रूपया इकट्ठा हो गया। वह राशि उन्हें सौंपते हुए कहा कि दूसरा काम नहीं कीजियेगा। कर्पूरी ठाकुर ने कहा कि इसे मुख्यमंत्री राहत कोष में जमा करा दूंगा। ऐसे उच्च कोटि के समाजवादी नेता थे कर्पूरी ठाकुर।

साहित्य प्रेमी कर्पूरी ठाकुर

प्रेम कुमार मणि ने अपने संस्मरण में लिखा है कि कर्पूरी ठाकुर साहित्य, कला और संस्कृति में काफी दिलचस्पी लेते थे। पटना में कांग्रेस के एक सांसद का पारिजात प्रकाशन की दुकान थी। उसमें कर्पूरी ठाकुर हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र खरीद रहे थे, जो छः खंडों वाली थी। उस समय उस किताब की कीमत लगभग साढ़े तीन हजार थी। व्यस्त होने के बावजूद वह पढ़ने के लिए समय निकाल ही लेते थे।

परिवारवाद के विरोधी

कर्पूरी ठाकुर राजनीति और परिवार को अलग – अलग रखते थे। उनके बेटा रामनाथ ठाकुर राजनीति में सक्रिय हो गये थे। उनकी चुनाव लड़ने की इच्छा थी किन्तु वह अपने पिता जी से कह नहीं सकते थे। कर्पूरी ठाकुर के करीबी नेताओं में बशिष्ठ नारायण सिंह थे। रामनाथ ठाकुर ने बशिष्ठ नारयाण सिंह से पैरवी के लिए कहा। बशिष्ठ नारायण सिंह ने कर्पूरी ठाकुर से रामनाथ ठाकुर को चुनाव लड़ने के लिए टिकट देने के लिए अनुरोध किया। कर्पूरी ठाकुर आपे से बाहर हो गये। उन्होंने कहा, क्या बात कर रहे हैं, आप? रामनाथ को टिकट दे दूं ? बशिष्ठ नारायण सिंह ने कहा, क्यों आपका सारा काम रामनाथ ही देखते हैं, तो चुनाव लड़ने में क्या बुराई है? उसका हक नहीं बनता है? माहौल काफी तनावपूर्ण हो गया था। कुछ देर के बाद कर्पूरी ठाकुर शांत हो गये। उन्होंने अपनी आँखे बंद कर ली थी। आँख खोलते ही उन्होंने कहा, बशिष्ठ बाबू आप ठीक कह रहे हैं। युवाओं को राजनीति में आना ही चाहिए। इस बार रामनाथ ही चुनाव लड़ेगा। मैं चुनाव नहीं लडूँगा। बात यहीं पर खत्म हो गयी। यह बात श्री अब्दुल बारी सिद्धिकी ने अपने संस्मरण में लिखा है।

जननायक कर्पूरी ठाकुर

कर्पूरी ठाकुर ने विधायक बनने के बाद अपने परिश्रम से राज्य की

अनुसूचित जाति, जन जाति, पिछड़ी जातियों को संगठित किया और बिहार में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार देने में सफल हो गये। इसे कायम रखने के लिए उन्होंने एक ऐसा फार्मुला दिया, जिसने देश में नये किस्म की बहस को जन्म दिया। पहली बार बिहार में अन्य पिछड़ी जातियों को दो भागों यथा – अतिपिछड़ी और पिछड़ी में विभाजित कर दिया। महिलाओं को भी आरक्षण देने का कार्य किया। बिहार में दलितों का संहार हुआ तो उन्होंने दलितों को बंदूक का लाईसेंस देने की घोषणा करके राजनीति में भूचाल ला दिया। अपने सादे जीवन के कारण उन्होंने राहगीरों से लेकर महलों तक के लोगों को भी अपने विश्वास में ले लिया था। उनकी लोकप्रियता के कारण ही उन्हें जननायक कहकर बुलाया जाता था। बिहार में लगातार उन्हें भारत रत्न देने की मांग होती रही है किन्तु अभी तक उन्हें भारत रत्न नहीं मिला है।

कर्पूरी ठाकुर पर सवर्णों का आरोप

कर्पूरी ठाकुर मुंगेरी लाल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने के पक्षधर थे और सवर्ण इसके विरोधी थे। पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने के कारण ही उनकी सरकार गिर गयी थी। उन पर आरोप लगता है कि उन्होंने बिहार में जातिवाद को बढ़ावा दिया। उन्होंने अगड़ा और पिछड़ा, शोषक और शोषित में समाज को बांट दिया, जिससे बिहार में जातीय हिंसा का दौर शुरू हुआ। आरक्षण ने इसमें घी का काम किया और इसके लिए सवर्णों ने जननायक को बहुत गाली दी। उन पर यह भी आरोप लगता है कि उन्होंने समाजवाद की बात की किन्तु गरीबी को मिटाने के लिए कोई कार्य नहीं किया। उल्टे उन्होंने गरीबी को महिमा मंडित किया। यह सवर्णों द्वारा कर्पूरी ठाकुर को नीचा दिखाने का एक बड़ा दुष्प्रचार था।

समय के पाबंद

अब्दुल बारी सिद्धिकी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि बिहार निवास के सीएम चैम्बर में कर्पुरी ठाकुर मुझे डिक्टेशन लिखवा रहे थे। इसी बीच उन्होंने कहा कि मुझे जाना है, मैं 12 बजे लौटूंगा फिर डिक्टेशन लिखवाऊँगा। उस समय मैं शादी –शुदा नहीं था। हमारे अन्दर स्टूडेंट वाला कैरेक्टर था। हमने सोचा कि वह अब थोड़े ही 12 बजे आयेंगे, 2 बजे के पहले नहीं आयेंगे। वह ठीक 12 बजे आ गये। वह हमें खोजने लगे। पता चला कि मैं कमरा में नहीं हूँ। उस समय हरिकिशन सिंह सुरजीत भी थे।

उन्होंने मुझे बहुत डांटा और कहा, आप लोग निकम्मे लोग हैं, आप लोगों को समय का महत्व पता नहीं है, समय कितना बलवान होता है।

निधन

सादगी, ईमानदारी और समाजवाद को निष्ठा के साथ जीने वाले जननायक कर्पूरी ठाकुर ने समाजवाद को स्थापित करने के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। उन्हें हृदय रोग हो गया था। 17 फरवरी 1988 को अचानक उनकी तबीयत बिगड़ गयी। उन्हें पी.एम.सी.एच. ले जाया गया किन्तु वे बचाए नहीं जा सके। जब उनकी लाश जीप में लायी जा रही थी, सड़क पर चलने वाले सभी रो रहे थे। उनका नायक जो उन्हें अकेला छोड़ कर चला गया था।

निष्कर्ष

कर्पूरी ठाकुर बेहद ही गरीब परिवार में पैदा हुए थे और उनके देहावसान के बाद भी उनकी गरीबी बनी रही। वह पढ़ने में कुशल थे। मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। इस अवसर पर भी उनके गांव के एक सवर्ण ने उनसे पैर दबाने के लिए कहा। उनकी गरीबी और समाज द्वारा उनके साथ किए गये व्यवहार ने उन्हें शिक्षक से राजनेता बनाया। बचपन में उनके साथ हुए व्यवहार ने उनके अन्दर समाजवाद की नींव रखी जो उनकी उम्र बढ़ने के साथ ही साथ मजबूत होती गयी। मुख्यमंत्री बनने के बाद समाजवाद को कायम करने के लिए एक व्यक्ति के रूप में उनसे जितना संभव हो सकता था, उससे ज्यादा उन्होंने किया। वास्तव में जननायक कर्पूरी ठाकुर गुदड़ी के लाल थे। दबे–कुचले लोगों के दिल में उनके प्रति सदा सम्मान बना रहेगा।

दृढ़निश्चयी दशरथ मांझी के आगे पहाड़ नतमस्तक

भारत के सात आश्चर्य में ताजमहल को शुमार किया जाता है। शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज महल के निधन के बाद उनकी याद में सफेद संगमरमर से आगरा के निकट यमुना के तट पर ताजमहल का निर्माण कराया था। किसी शायर ने कहा था कि '' बनवाकर एक हसीं ताजमहल हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक।'' शाहजहाँ द्वारा ताजमहल का निर्माण प्रेम करने वालों के लिए नीचा दिखाने जैसा हो सकता है क्योंकि हर प्रेम करने वाले के पास इतना धन नहीं है, जो अपनी बेगम के प्रेम में ताजमहल का निर्माण कराये। दशरथ मांझी ने इसे झूठा साबित कर दिया है। उनके द्वारा बनायी गयी सड़क शाहजहाँ के ताजमहल से ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है। शाहजहाँ ने धन खर्च किया क्योंकि उसके पास धन था। उसमें प्रेम का पसीना नहीं लगा है। दशरथ मांझी लगभग 22 वर्षों तक लगातार अपने पसीने से अपने प्रेम को सींचते रहे। उन्हें लोग पागल, दीवाना, खिसका हुआ और सनकी तक कहा किन्तु अपने दृढ़निश्चय से उन्होंने पहाड़ को चीरकर रास्ता बनाया और पहाड़ को कहा कि तुम्हारी उँचाई के कारण हमारे प्रेम की तरह किसी और का प्रेम नहीं मरेगा।

जन्म और जवानी

बिहार के गया जिला अन्तर्गत गहलौर नामक गांव में 1934 में दशरथ मांझी का जन्म हुआ था। दशरथ मांझी के जन्म के समय बिहार में जमींदारों एवं सामंतों का दबदबा और बोलबाला था। आम तौर पर किसी दलित के घर बच्चे का जन्म होने पर एक और हलवाहा और लड़की होने पर एक नौकरानी आयी है, ऐसा कहा जाता था। जमींदार खुश होकर कुछ खाने को देता था और बदले में मालिक को दुआयें दी जाती थीं। महाजनी प्रथा जोरों पर थी। एक बार कर्ज लेने के बाद गरीबों का जीवन खत्म हो जाता था किन्तु महाजन का सूद कभी खत्म ही नहीं होता था। मूलधन नहीं लौटाने के बदले में अपनी बची – खुची जमीन महाजन को लिखनी पड़ती थी अथवा मालिक के यहाँ बंधुआ मजदूर बनकर रहना पड़ता था। ऐसे ही माहौल में दशरथ मांझी का जन्म हुआ था।

दशरथ मांझी के पिता जी ने किसी जमींदार से कर्ज लिया था। उसे वापस नहीं कर पाने के कारण जमींदार ने दशरथ मांझी को बंधुआ मजदूर बनने को कहा। उन्हें यह पसंद नहीं था। एक दिन चुपके से दशरथ मांझी गाँव छोड़कर धनबाद चले गये। वहाँ उन्होंने सात वर्षों तक कोयला खदान में मजदूर का काम किया। 1955 में जब वे घर वापस लौटे तो उनकी माँ का निधन हो चुका था। गाँव में कुछ

भी नहीं बदला था। बिजली और पानी का अभाव अभी भी था। सड़क और अस्पताल गाँव में नहीं थे। उसके लिए पहाड़ को पार करके वजीरगंज या गया जाना पड़ता था। उनका विवाह बचपन में ही हो गया था किन्तु जब वे अपनी पत्नी को विदा कराने गये तो लड़की के घरवालों ने यह कह कर विदा नहीं किया कि लड़का कोई काम नहीं करता है। इस बीच अपनी विवाहित पत्नी फगुनिया से ही दशरथ मांझी को प्रेम हो गया था और उन्होंने परिवार वालों के मना करने के बाद भागकर विवाह कर लिया। दोनों पति – पत्नी के रूप में अभाव के साथ खुशी का जीवन जी रहे थे। उन्हें एक बेटा हुआ।

दशरथ मांझी जीवनयापन के लिए मजदूरी करते थे। उन्हें मजदूरी के लिए पहाड़ के उस पार जाना पड़ता था। उनकी पत्नी दोपहर का खाना प्रतिदिन पहाड़ पार करके पहुँचाती थी । 1960 में वह दोबारा माँ बनने वाली थी। एक दिन दोपहर का खाना लेकर पहाड़ के उस पार जाते समय वह फिसल गयी। दशरथ मांझी उसे अस्पताल लेकर गये। उसने एक बच्ची को जन्म दिया किन्तु स्वयं नहीं बच पायी। दशरथ मांझी को ऐसा लगा कि यदि समय से फगुनिया अस्पताल पहुँच गयी होती तो वह नहीं मरती। अंतिम संस्कार करने और गम से निकलने के बाद दशरथ मांझी ने संकल्प लिया कि जिसने हमारा प्यार छीना है, उसे हम छोड़ेंगे नहीं। जिस समय वह यह प्रण ले रहे थे, उनके पास अपने श्रम तथा हाथ में हथौड़ी और छेनी के अलावा और कुछ भी नहीं था।

पहाड़ पर प्रहार

सन् 1960 में दशरथ मांझी ने अपने सीमित संसाधन और बुलंद हौसला के साथ पहाड़ पर प्रहार करना शुरू किया। गर्मी, जाड़ा, धूप और बारिश की परवाह किए बिना वह लगातार पहाड़ को तोड़ रहे थे। गाँव के गरीबों से लेकर पहाड़ से गुजरने वाले सैलानियों तक ने उनका उपहास किया। फगुनिया की मौत ने तो मानो दशरथ मांझी को योगी बना दिया था। वह अपनी ही धुन में थे। उन्हें किसी की परवाह नहीं थी। उन्हें लक्ष्य पाने की दृढ़ इच्छा ने भूख से विमुख कर दिया था। मिला तो खाये, नहीं मिला तो कोई गम नहीं। उनकी आँखों में फगुनिया की तस्वीर और सामने पहाड़ को तोड़ने का लक्ष्य, इसके सिवा उन्हें कुछ दिखता ही नहीं था। इससे बड़ा कर्मयोग भला क्या हो सकता है? पहाड़ काटने में उनकी तल्लीनता ऐसी जैसे उन्हें इसके लिए पैसा दिया गया हो। उनके पिता ने कहा कि यदि तुम ऐसे ही पहाड़ के काटने में लगे रहोगे, तो तुम्हारे बच्चों का पेट कैसे भरेगा। दशरथ मांझी ने कुछ समय पैसा कमाने के लिए भी निकाला। गर्मियों के दिनों में काम नहीं होता। गाँव के सभी लोग पैसा कमाने हेतु कहीं चले जाते किन्तु उन्होंने पहाड़ से दूर जाने का नाम नहीं लिया। वह जंगल में शिकार करके या पेड़ – पौधों की पत्तियों को चबाकर अपनी भूख और प्यास मिटा लेते किन्तु पैसा कमाने के लिए

पहाड़ को तोड़ना नहीं छोड़ा। बहुत बार गाँव लौटकर आने पर गाँव वालों को आश्चर्य होता कि दशरथ कैसे जीवित है? समय बीतता गया। दशरथ मांझी अपनी मंजिल की ओर आगे बढ़ते गये। आस – पास के लोगों को भी उम्मीद की किरण दिखाई देने लगी। अब लोग मजाक करने के बजाए उनका सहयोग करने लगे। कोई खाना और पानी से तो कोई छेनी और हथौड़ा, कोई पत्थर काटने में दशरथ मांझी को सहयोग करने लगे। इस प्रकार, धीरे –धीरे गाँव से बाहर उनकी ख्याति बढ़ने लगी। उनके काम को देखने के लिए पत्रकार भी जाने लगे और उनकी ख्याति पहाड़ से पटना तक पहुंच गयी।

दशरथ मांझी ने 1960 से 1982 तक 22 वर्षों में अकेले अपने दम पर गहलौर के पहाड़ में 360 फुट लम्बा, 25 फुट गहरा और 30 फुट चौड़ा रास्ता बना दिया। इस रास्ते ने अतरी और वजीरगंज सेक्टर की दूरी 55 किलोमीटर से घटाकर मात्र 15 किलोमीटर कर दी। लोगों ने उनका मजाक उड़ाया किन्तु उन्होंने अपने प्रयास से लोगों का जीवन सुगम बना दिया। उन्होंने स्वयं कहा है, '' जब मैंने पहाड़ तोड़ना शुरू किया तो लोगों ने मुझे पागल कहा लेकिन इस बात ने मेरे निश्चय को और भी मजबूत किया। पहले –पहल गाँव वालों ने मुझ पर ताने कसे लेकिन उनमें से कुछ लोगों ने मुझे खाना दिया और औजार खरीदने में मेरी सहायता भी की।'' उनकी इस उपलब्धि के लिए 2006 में बिहार सरकार ने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में पद्मश्री हेतु उनके नाम का प्रस्ताव रखा।

टूटे मंच को सम्भालना

बात सन् 1975 की है। देश में आपात्काल लगा हुआ था। पूरे देश में राजनीतिक लोग अपने को बचाने में लगे हुए थे। बहुत से लोगों को जेल में डाल दिया गया था। उसी समय पटना में इंदिरा गांधी की एक रैली थी। उनके भाषण के लिए मंच बनाया गया था। जिस समय इंदिरा गांधी भाषण दे रही थीं, उसी समय मंच टूट गया। मंच के पास ही दशरथ मांझी थे। उन्होंने अपने साथियों की मदद से मंच को संभाल लिया फिर इंदिरा गांधी अपना भाषण पूरा कर पायीं। बाद में इस बात की जानकारी इंदिरा गांधी को हुई। दशरथ मांझी ने उनके साथ एक फोटा खिंचवाया। उनका यह फोटो कई अखबारों में छपा। एक चालाक जमींदार दशरथ मांझी से सड़क बनवाने में सरकार की मदद लेने के नाम पर एक सादे कागज पर अगूंठा लगवा लिया और उनके नाम 25 लाखा रुपए चूना लगा दिया। बाद में जब उन्हें पता चला तो इसकी शिकायत करने दिल्ली के लिए निकल पड़े।

पैदल दिल्ली की यात्रा

जमींदार द्वारा 25 लाख की धोखधड़ी की शिकायत प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से करने के लिए जब दशरथ मांझी निकले, उनके पास टिकट के लिए 20 रुपए नहीं थे। वह ट्रेन में चढ़ गये। कुछ ही स्टेशन जाने के बाद टी.टी.ई. ने

उन्हें ट्रेन से उतार दिया। धुन के पक्के दशरथ मांझी का हौसला भला टी.टी.ई. के ट्रेन से उतार देने से कहाँ पस्त होने वाला था। वह पैदल ही दिल्ली पहुँच गये। इंदिरा गांधी के साथ का फोटो लिए उन्होंने प्रधानमंत्री के आवास का चक्कर लगाया। सुरक्षा प्रहरियों ने फोटो को फाड़ दिया और प्रधानमंत्री से वह नहीं मिल सके। निराश होकर वे बिहार वापस आ गये।

पत्रकार का सहयोग

धोखा देने वाले जमींदार ने दशरथ मांझी को प्रताड़ित करना शुरू किया और धमकी देने लगा। कुछ लोग पहाड़ तोड़ने वाले दशरथ मांझी की मदद करने हेतु आगे आये। उन्हें भी वह जान से मारने की धमकी देकर साथ देने से रोकने का प्रयास किया। जमींदार के कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। एक पत्रकार को इस बात की भनक लग गयी और वह ग्रामीणों के सहयोग से दशरथ मांझी के साथ स्थानीय थाने के सामने धरना पर बैठ गया। उसने पूरी घटना को एक कहानी के रूप में अखबार में छपवा दिया। पत्रकार के सहयोग के कारण दशरथ मांझी को छोड़ दिया गया।

निधन

दशरथ मांझी ने लगातार 22 वर्षों तक पत्थर तोड़ने का कार्य किया था। वह धुन के इतने पक्के थे कि उन्हें अपने शरीर का ख्याल ही नहीं रहा। उन्हें गाल ब्लाडर का कैंसर हो गया था। वह इसका इलाज कराने दिल्ली के ऑल इंडिया मेडीकल साइंसेज में गये। किन्तु कैंसर अंतिम दौर में था। इलाज के दौरान दिनांक 17 अगस्त 2007 को उनका देहान्त हो गया। उनका अंतिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ किया गया।

निष्कर्ष एवं सम्मान

बिहार सरकार ने पटना में दशरथ मांझी इंस्टीच्यूट ऑफ लेबर स्टडीज एंड इंप्लायमेंट स्थापित किया है, जिसमें श्रम पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। वर्ष 2016 में भारत सरकार ने उनके सम्मान में डाक टिकट जारी किया। सरकार ने उनके नाम को पद्मश्री के लिए अनुशंसित किया। वर्ष 2011 में सरकार ने उनके द्वारा बनायी गयी सड़क को दशरथ मांझी पथ के नाम से घोषित किया है।

दशरथ मांझी ने उस पुरानी कहावत को चरितार्थ किया कि, मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।'' अथवा ''कौन कहता है आकाश में सुराख नहीं हो सकता, जरा एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।'' यदि आप किसी प्रेरणा को अपने जीवन का लक्ष्य बना लें और लक्ष्य को हासिल करने के लिए दृढ़ निश्चय कर लें, तो सफलता अवश्य मिलेगी क्योंकि दशरथ मांझी ने अडिग पहाड़ को काटकर डिगा दिया तो दृढनिश्चय से कितना भी कठिन लक्ष्य हो, हासिल किया जा सकता है।

डॉ.के.आर.नारायणन

श्री गुरू घासीदास

बाबू जगदेव प्रसाद

उदा देवी पासी

कर्पूरी ठाकुर

सिद्धू–कान्हू

मायावती

दशरथ मांझी